जिनभाषित

जून 2001

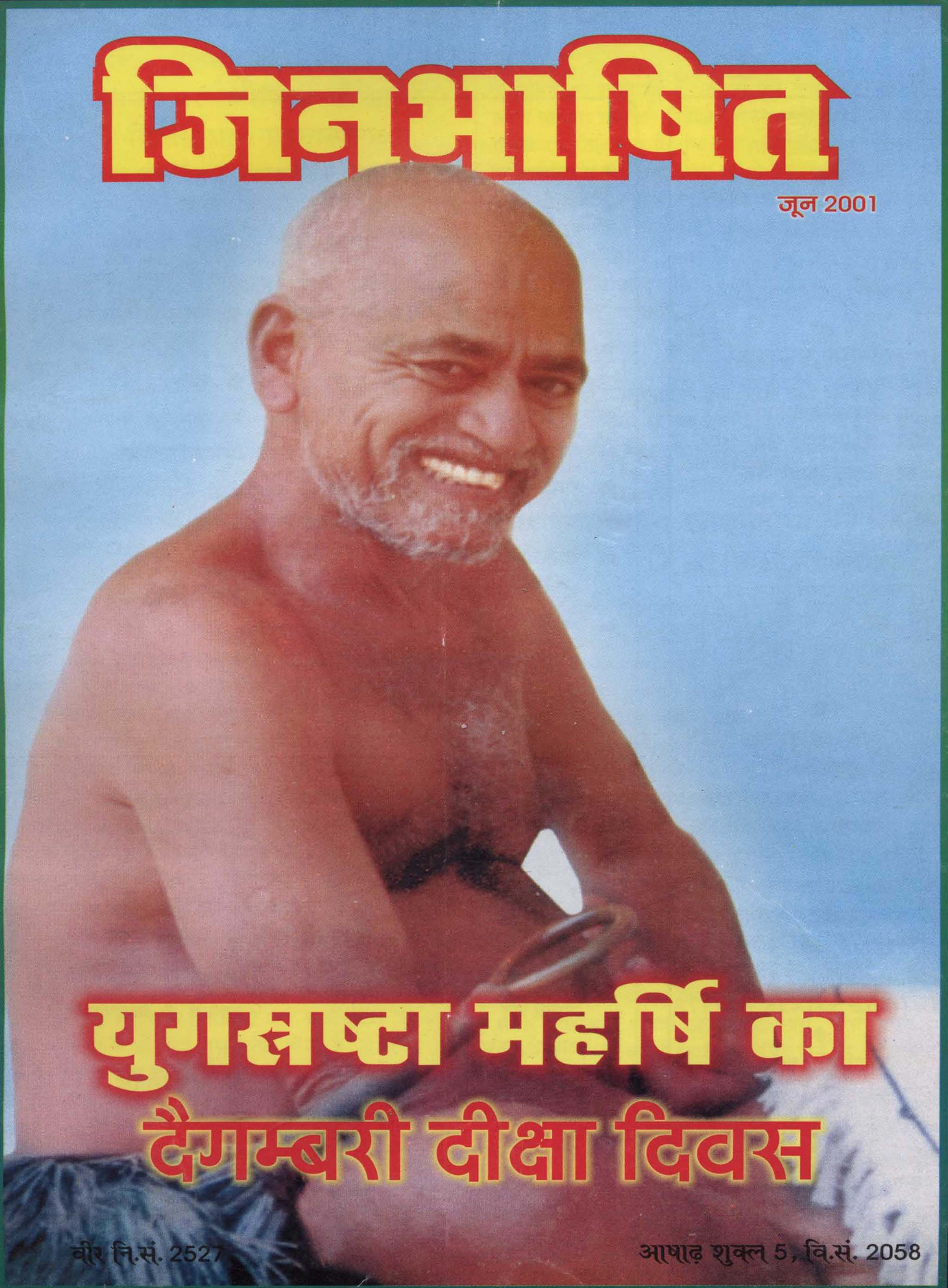

युगस्रष्टा महर्षि का दैगम्बरी दीक्षा दिवस

वीर नि.सं. 2527

आषाढ़ शुक्ल 5, वि.सं. 2058

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

जिनभाषित

मासिक

जून 2001

वर्ष 1 . अङ्क 1

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
137, आराधना नगर,
भोपाल-462003 म.प्र.
फोन 0755-776666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द लुहाड़िया
पं. रतनलाल बैनाडा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश राणा, जयपुर

◆

द्रव्य-औदार्य
श्री अशोक पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428,352278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- **सम्पादकीय** : युगस्रष्टा महर्षि का दैगम्बरी दीक्षा दिवस 7
- **आत्मोद्‌गार**
  - आत्मान्वेषी विद्याधर की दैगम्बरी दीक्षा : मुनि श्री क्षमासागर 11
  - विद्याधर से विद्यासागर : युग परिवर्तन : मुनि श्री समता सागर 14
  - श्रवण परम्परा के ज्योतिर्मय महाश्रमण : मुनि श्री अजित सागर 15
- **शोध आलेख**
  - संयम, तप, अपरिग्रह का मनोविज्ञान : प्रो. रतनचन्द्र जैन 17
- **शंका समाधान :** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 20
- **व्यंग्यकथा** : साझे की सुई : शिखर चन्द्र जैन 22
- **नारीलोक/लेख**
  - नारी का सामाजिक मूल्यांकन आवश्यक : श्रीमती रंजना पटोरिया 25
- **बालवार्ता/कथा**
  - रात्रिभोजन त्यागी शृगाल : श्रीमती चमेली देवी जैन 27
- **लेख**
  - मध्यप्रदेश शासन द्वारा जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा दिये जाने की अधिसूचना जारी : सुरेश जैन, आई.ए.एस. 28
- **कविताएँ**
  - समर्पण : मुनि श्री क्षमासागर 13
  - सिर्फ हाशिये पर जीने की दे हमको लाचारी : अशोक शर्मा 20
  - बादल का मन : श्रीपाल जैन 'दिवा' 20
  - सत्कारज और दान ही कीर्ति के संजोग : डॉ. विमला जैन 'विमल' 22
  - शिखर का स्पर्श कैसे? : आचार्य श्री विद्यासागर 27
  - समता का संगीत : आचार्य श्री विद्यासागर 33
- **आदर्श कथाएँ**
  - नाम में कुछ नहीं : डॉ. जगदीशचन्द्र जैन 4
  - आदर्श शासक : यशपाल जैन 17
  - प्रश्न और उत्तर : यशपाल जैन 17
- **विशेष समाचार** 1-3,
- **समाचार** 26,30-32
- **आपके पत्र : धन्यवाद** 5-6

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष समाचार

महावीर जयन्ती पर अमेरिकी सीनेट में विशेष प्रार्थना

वाशिंगटन। अमेरिकी कांग्रेस में बुधवार को कार्यवाही शुरू होने से पहले भगवान् महावीर की 2600वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में जैनधर्म की प्रार्थना की गई। अमेरिकी कांग्रेस के 100 वर्षों के इतिहास में यह पहला मौका है जब कांग्रेस में जैन प्रार्थना की गई। उस समय समूचे अमेरिका से जैन समुदाय के 100 से भी अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। यह प्रार्थना अँग्रेजी में अनूदित कर पढ़ी गई। अमेरिकी कांग्रेस में अंग्रेजी भाषा के अलावा और किसी भी भाषा में प्रार्थना नहीं की जा सकती।

• *दैनिक भास्कर, भोपाल*
24 मई 2001 से साभार

शाबाश गुजरात

छह अप्रैल दो हजार एक से भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक वर्ष की समारोह-शृंखला का श्रीगणेश हुआ है। राजधानी दिल्ली तथा अन्य राज्यों की राजधानियों/प्रमुख शहरों में महावीर जयन्ती के आयोजन हुए, कई औपचारिक ऐलान हुए, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसे देश का सांस्कृतिक इतिहास दर्ज कर सके। केन्द्र सरकार ने एक अरब रुपये खर्च करने की घोषणा तो बहुत पहले से की है, लेकिन अभी तक उसे लेकर कोई स्पष्ट तजबीज़ सामने नहीं आयी है। लगता है, वह एक तरह की निर्बल राजनैतिक गर्वोक्ति थी, जिसका कोई ठोस नतीजा कभी सामने नहीं आयेगा।

हाँ, सबसे बड़ी पहल गुजरात में हुई। राज्य के मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेल ने दो प्रमुख ऐलान किये- 1. राज्य में 'अहिंसा महाविद्यालय' की स्थापना की जाएगी। 2. सरकारी अतिथि-गृहों (गेस्ट हाउसों) में न तो मांसाहार बनेगा और न ही परोसा जाएगा। उपर्युक्त दोनों निर्णय ऐतिहासिक हैं और राज्य के सकारात्मक सहयोग को परिभाषित करते हैं। ये वस्तुतः ऐसे फैसले हैं, जिनसे देश की सांस्कृतिक अस्मिता प्रभावित होगी और अहिंसा को मैदान में उतार कर जीने की संभावनाएँ शक्ल ग्रहण करेंगी। यद्यपि श्री पटेल के निर्णय की कई लोगों ने आलोचना की है, लेकिन वे अविचल हैं और अहिंसा के प्रचार-प्रसार की दिशा में कुछ और कदम उठाने के लिए संकल्पित हैं। आश्चर्य, कि जैन समाज के किसी भी वर्ग ने श्री पटेल को उनके इस साहस के लिए न तो कोई बधाई-तार भेजा है, न बधाई-ख़त ही लिखा है, जबकि इस संदर्भ में उनके पास करोड़ों संदेश पहुँचने थे। क्या हम इतने कृपण/दरिद्र हैं कि उन्हें एक पोस्टकार्ड भी नहीं लिख सकते? और तो और 'जिनेन्दु' (अहमदाबाद) को छोड़कर किसी अन्य जैन पत्र पत्रिका ने इस ऐतिहासिक खबर को सुर्खियों में डालने की मिहरबानी भी नहीं की। क्या जैन समाज इसी तरह प्रमत्त/सुस्त रह कर भगवान् महावीर के छब्बीस सौवें जन्म कल्याणक महोत्सव को संपन्न करेगा?

हमें जगना चाहिए और यह जो एक वृहद संभावना हमारी आँखों के सामने आ खड़ी हुई है, उसका पूरी ताक़त से सकारात्मक दोहन करना चाहिए। राज्यशः सर्वेक्षित करना चाहिए कि देश में कुल कितने राजकीय अतिथि-गृह हैं अर्थात् लोक निर्माण विभाग के कितने, वन विभाग के कितने, तथा अन्य परियोजनाओं के कितने? हमें यह भी जानकारी संकलित करनी चाहिए कि बड़े व्यापारिक खानदानों के अपने निजी गेस्टहाउसेज़ कितने हैं? क्या जैन उद्योगपतियों के गेस्टहाउसों में मांसाहार वर्जित है, या चल रहा है? जहाँ तक हमारी जानकारी है कई ऐसे जैन उद्योगपति हैं, जिनके संस्थान-स्थित गेस्टहाउसों में मांसाहार परोसा जाता है, ऐसे में क्या हम उनकी एक बैठक ले कर उनसे इसे बंद करने की अपील नहीं कर सकते? खयाल रहे कि जब हम पूरे देश के राजकीय/निजी अतिथि-गृहों की सूची तैयार करेंगे तब निश्चय ही हमारे सामने एक बहुत बड़ा कार्य-क्षेत्र खुल जाएगा, जिसमें हम अहिंसा के व्यावहारिक रूप को तर्कसंगत तथा प्रभावी ढंग से प्रचारित कर सकेंगे।

'तीर्थंकर' मई 2001 से साभार

मांसयुक्त खाद्यपदार्थों को प्रतीक चिह्न ● द्वारा पहचानें

अहिंसक और शाकाहारी वर्ग की चिरप्रतीक्षित मांग को दृष्टि में रखकर केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (स्वास्थ्य विभाग) नई दिल्ली ने 'भारत का राजपत्र-असाधारण सं. 166, भाग-II, खण्ड-3, उपखण्ड (i), बुधवार, 4 अप्रैल 2001 को एक अधिसूचना जारी की है।

इस अधिसूचना/सा.का. नि. 245 (अ) के अनुसार खाद्य अपमिश्रण निवारण नियम 1955 में संशोधन करके मांसाहार युक्त पदार्थों के ऊपर एक प्रतीक चिन्ह बनाना अनिवार्य कर दिया है। राजपत्र में प्रकाशित तिथि से 6 मास के पश्चात् यानी 4 अक्टूबर 2001 से प्रवृत्त होने वाले इस खाद्य अपमिश्रण निवारण (चौथा संशोधन) नियम, 2000 में नियम 32-अ खण्ड-ख में संशोधन किया गया है।

इस संशोधन के पश्चात् अब 'जब भी किसी खाद्य पदार्थ में एक संघटक के रूप में पक्षियों, ताजे जल अथवा समुद्री जीव-जन्तुओं, अण्डों अथवा किसी भी जीव-जन्तु के उत्पाद सहित कोई समग्र जीव-जन्तु अथवा उसका कोई भाग, परन्तु इसमें दूध या दूध से बने हुए पदार्थों को छोड़कर, अन्तर्विष्ट होने पर वह उत्पाद मांसाहारी खाद्य पदार्थ है यह सूचित करना होगा।

इस प्रयोजन के लिये निम्न अनुबंधित प्रतीक और रंग कोड के द्वारा इस आशय की एक घोषणा की जाएगी। इस प्रतीक में भूरे रंग से भरा हुआ एक वृत्त होगा। यह मूल प्रदर्शन पैनल का क्षेत्र 100 से.मी. के वर्ग तक 3 मि.मी. न्यूनतम व्यासयुक्त, 100 से.मी. वर्ग से ऊपर 500 से.मी. वर्ग तक 4 मि.मी. न्यूनतम व्यासयुक्त, 500 से.मी. वर्ग से ऊपर 2500 से.मी. वर्ग तक 6 मि.मी. न्यूनतम व्यासयुक्त एवं 2500 से.मी. वर्ग से ऊपर 8 मि.मी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यूनतम व्यास आकार वाला वृत्त बनाना होगा। किन्तु उक्त विहित न्यूनतम आकार से कम नहीं होगा। वृत्त के व्यास से दुगने किनारे वाली भूरी बाह्य रेखा वाले वर्ग के भीतर यह वृत होना चाहिए, यथा-

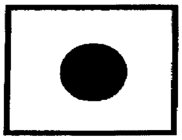

यह प्रतीक मूल प्रदर्शन पैनल पर विषम पृष्ठभूमि वाले पैकेज पर उत्पाद के नाम या ब्रांड नाम के बिलकुल नजदीक में बनाना होगा। इसके अतिरिक्त लेबलों, आधानों (कंटेनर्स) पैम्फलेटों, इश्तहारों (लीफलीट्स) एवं किसी भी प्रकार के प्रचार माध्यम आदि के रूप होने वाले विज्ञापनों पर भी प्रमुख रूप में से प्रदर्शित करना होगा।

इतना ही नहीं, जहाँ किसी खाद्य पदार्थ में केवल अंडा एक मांसाहारी संघटक के रूप में अन्तर्विष्ट होगा तो वहां विनिर्माता, पैककर्ता अथवा विक्रेता को उक्त प्रतीक के अलावा इस आशय की एक घोषणा भी करना होगी।

उक्त अधिसूचना में उपभोक्ता वर्ग के व्यापक हितों को दृष्टि में रखते हुए एक स्पष्टीकरण IX भी जोड़ा गया है, जिसमें 'मांसाहारी खाद्य' को परिभाषित/व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि "मांसाहारी खाद्य" से एक ऐसा खाद्य पदार्थ अभिप्रेत है जिसमें एक संघटक के रूप में पक्षियों, ताजा जल अथवा समुद्री जीव-जन्तुओं, अण्डों अथवा किसी भी जीव-जन्तु के उत्पाद सहित कोई समग्र जीव-जन्तु अथवा उसका कोई भाग अन्तर्विष्ट किया गया हो। परन्तु इसके अंतर्गत दूध या दूध से बना हुआ कोई भी उत्पाद शामिल नहीं किया/माना जा सकेगा।

खाद्य अपमिश्रण निवारण (चौथा संशोधन) नियम 2000 के प्रारंभ से पूर्व में विनिर्मित और बिना प्रतीक पैक किए गए ऐसे किसी भी मांसाहारी खाद्य के ऊपर उक्त नियम के उपबंध लागू नहीं होंगे।

अतः अहिंसा एवं शाकाहार में आस्था रखने वालों के साथ ही सामान्य उपभोक्ता वर्ग से भी अपेक्षा है कि आगामी 4 अक्टूबर 2001 के पश्चात् जो भी खाद्य पदार्थ खरीदें, उसमें कहीं, किसी भी प्रकार के मांसाहारी सामग्री का सम्मिश्रण तो नहीं हुआ है, यह देखने/जानने हेतु उक्त प्रतीक चिन्ह को देखकर ही खरीदें। कदाचित् कहीं संदेह हो तो सक्षम अधिकारी के पास अपनी शिकायत दर्ज कराएँ।

केन्द्र सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय को अनुरोध पत्र भेजें

देश के अहिंसक एवं शाकाहारी वर्ग की दीर्घकाल से की जा रही मांग को दृष्टिगत रखकर केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (स्वास्थ्य विभाग) नई दिल्ली ने भारत का राजपत्र-असाधारण, 4 अप्रैल 2001 में एक अधिसूचना प्रकाशित कराई है। इसमें 'खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1955 में चौथा संशोधन किया गया है, जो कि इसके नियम 32 (अ) खण्ड (ख) से संबंधित है।

इस संशोधन के अनुसार जो कि आगामी 4 अक्टूबर 2001 से प्रवृत्त/प्रभावी होगा, यदि किसी भी खाद्य पदार्थ में एक संघटक के रूप में पक्षियों, ताजे जल अथवा समुद्री-जीव-जन्तुओं अथवा अण्डों सहित कोई समग्र जीव-जन्तु अथवा उसका कोई भाग पड़ा हुआ हो, तो एक प्रतीक चिन्ह [●] बनाना होगा, जो कि उत्पादक के नाम या ब्राण्ड नाम के बिल्कुल नजदीक विषम पृष्ठभूमि वाले पैकेज में भूरे रंग के वृत्त तथा भूरे रंग की बाह्य रेखाओं के बीच बना होगा।

इस अधिसूचना के हिन्दी भाग एवं अंग्रेजी भाग में परस्पर कुछ विसंगतियाँ हैं। यथा- (1) नियम में मांसाहारी खाद्य की परिभाषा करते हुए अंग्रेजी भाग में 'किसी अन्य जीव-जन्तुओं के उत्पाद किन्तु उसमें से दूध और दूध के उत्पाद को छोड़कर' लिखा है, जो कि हिन्दी भाग में किन्हीं कारणों से छोड़ा/छूट गया है, (2) केवल अण्डे का प्रयोग होने पर निर्माता, पैककर्ता अथवा विक्रेता को उक्त प्रतीक के अलावा एक घोषणा करने का नियम हिन्दी भाग में है तो अंग्रेजी भाग में प्रस्तुत भाषा में छूट की गुंजाइश-सी लग रही है, (3) अनुवाद में भाषा-व्याकरणगत भूलें हैं, (4) हिन्दी भाग में प्रदर्शित प्रतीक चिन्ह को असमान अनुपात में बनाया गया है, तथा (5) ताजा जल की परिभाषा/लक्षण भी नहीं दिया गया है।

इन सभी कारणों से उपभोक्ताओं के व्यापक हितों का संरक्षण होना कठिन होगा, क्योंकि जो व्यक्ति हिन्दी भाषा पर अवलंबित रहेगा उसे उक्त नियम की पूर्ण/उचित जानकारी नहीं हो सकेगी। अतएव अहिंसा, शाकाहार एवं जीवदया में आस्था रखने वालों से अपेक्षा है कि वे अपने-अपने अनुरोध केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय को भेजें, ताकि उक्त बिन्दुओं पर 4 अक्टूबर 2001 के पहले सुधार होकर राजपत्र में संशोधित रूप का पुनः प्रकाशन हो सके।

जब से विद्यासागर जी के दर्शन किये

मैंने इन जैसा किसी मुनि के मुख से उपदेश, प्रवचन नहीं सुना।एक-एक वाक्य में वैदुष्य झलकता है। **अध्यात्मी कुंदकुंद और दार्शनिक समंतभद्र का समन्वय मैंने इन्हीं के प्रवचनों में सुना है।** मैं पंच नमस्कार मंत्र का जाप त्रिकाल करता हूँ और णमो लोए सव्व साहूणं जपते समय ये मेरे मानस पटल पर विराजमान रहते हैं। आज के कतिपय साधुओं की विडम्बनाओं को देखकर मेरा यह मन बन गया था कि इस काल में सच्चा दिगम्बर जैन साधु होना संभव नहीं, किन्तु जब से विद्यासागर जी के दर्शन किये हैं, मेरे उक्त मत में परिवर्तन हो गया है। जिनका मत आज के कतिपय साधुओं की स्थिति से खिन्न होकर णमो लोए सव्व साहूणं पद से विरक्त हुआ, उनसे हमारा निवेदन है एक बार आचार्य विद्यासागर जी का सत्संग करें। हमें विश्वास है कि उनकी धारणा में निश्चित परिवर्तन होगा।

स्व. पंडित कैलाशचंद्र सिद्धांतशास्त्री
वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जिनभाषित' को सन्तों का आशीर्वाद

पत्रिका का शुभारम्भ क्यों?

'जिनभाषित' जिनवाणी माँ की चिट्ठी

वर्णीभवन सागर (म.प्र.) में विराजमान परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनि श्री समतासागर जी, मुनि श्री प्रमाणसागर जी और एलक श्री निश्चयसागर जी को दिनांक 10 जून 2001 को प्रातःकालीन सभा में नवप्रसूत मासिक पत्रिका 'जिनभाषित' का मई-2001 अंक समर्पित किया गया। तीनों सन्तों ने पत्रिका को शुभाशीष से कृतार्थ किया। इस अवसर पर पत्रिका के सम्पादक एवं 'दिगम्बर जैन साहित्य और यापनीय साहित्य' ग्रंथ लिख रहे प्रो. रतनचन्द्र जी जैन को सागर जैन समाज ने सम्मानित किया।

रतनचन्द्र जी को शुभाशीष प्रदान करते हुए पूज्य मुनि श्री समतासागर जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'एक श्वेताम्बर विद्वान ने षट्खण्डागम आदि अनेक दिगम्बर ग्रन्थों को यापनीय सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा रचित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उसका सप्रमाण खण्डन करने के लिए प्रो. रतनचन्द्र जी जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिख रहे हैं वह सचमुच ऐतिहासिक है और विद्वद्जगत को भी चौंकाने वाला है। ऐसे-ऐसे तथ्य निकालकर वे सामने रख रहे हैं जिन्हें सुनकर आचार्यश्री प्रसन्न होते हैं और आश्चर्यचकित होते हैं। कुण्डलपुर के भीड़ भरे समारोह में भी आचार्यश्री ने घंटों-घंटों बैठकर इस ग्रन्थ के पृष्ठ सुने हैं। हम लोगों ने यह प्रत्यक्षरूप से देखा है कि कितने मनोयोग से, आचार्यश्री सुनते थे। हजारों श्रावक भी दर्शन करने आ रहे हैं तो आते रहें, लेकिन आचार्यश्री जब सुनते थे और निर्देश देते थे तब कोई व्यवधान उन्हें प्रभावित नहीं करता था। परम्परा की रक्षा के लिए आचार्यश्री की यह चिन्ता और तत्परता स्तुत्य है और उनकी आज्ञा के पालन में लेखक की निष्ठा सराहनीय है। बहुत बड़ा काम वह कर रहे हैं।'

पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी ने अपने आशीर्वचन में कहा कि प्रो. रतनचन्द्र जी जिनवाणी और दिगम्बर जैन परम्परा की जो सेवा कर रहे हैं, जिस कार्य में वे अभी संलग्न हैं उसे शताब्दियाँ याद करेंगी। एक श्वेताम्बर विद्वान् ने जिस ग्रन्थ में हमारे धरसेन पुष्पदन्त, भूतबलि, गुणधर, शिवार्य, वट्टकेर आदि आचार्यों को यापनीय सम्प्रदाय का आचार्य बतलाया है वह ग्रन्थ पढ़कर आचार्यश्री का मन मर्माहत हो उठा था। उन्होंने अपनी प्रति मुझे पढ़ने को दी कि देखो इसमें क्या लिखा है? उन्होंने सैकड़ों जगह अण्डरलाइन कर रखे थे। आचार्यश्री ने रतनचन्द्र जी की योग्यता और प्रतिभा को समझते हुए उन्हें आदेश दिया कि इस पुस्तक का जवाब लिखना चाहिए। आज्ञा शिरोधार्य करके रतनचन्द्र जी ने उस पूरी की पूरी पुस्तक का, श्वेताम्बर ग्रन्थों से उद्धरण दे-देकर सयुक्तिक, सप्रमाण जवाब दिया है। और इनके इसी योगदान को ध्यान में रखते हुए सर्वोदय जैनविद्यापीठ ने कुण्डलपुर के महामहोत्सव में इनका सम्मान किया था। यह किसी व्यक्ति का सम्मान नहीं था, यह उनके द्वारा किये गये सत्प्रयासों का सम्मान था। इससे दिगम्बर परम्परा की बहुत बड़ी सेवा होगी। उन्होंने उसका अधिकांश भाग आचार्यश्री को अमरकण्टक में सुनाया था। अभी उसका कुछ भाग कुण्डलपुर के प्रवास में सुनाया। उसे मैंने भी सुना था। आचार्यश्री के उसमें काफी कुछ सुझाव रहे। रतनचन्द्र जी उन सारे सुझावों और संशोधनों को पूरा कर उसे प्रकाशित करनेवाले हैं। आचार्यश्री की भावना तो यह थी कि कुण्डलपुर के महोत्सव में उसका विमोचन कर दिया जाए, लेकिन बड़ा दुरूह कार्य है। बड़े कार्य श्रमसाध्य और समयसाध्य होते हैं।

'जिनभाषित' की उद्भवकथा

मुनि श्री प्रमाणसागर जी ने आगे कहा- 'ऐसे ही विद्वानों के मन में यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि दिगम्बर जैन संस्कृति के प्रवाह को निर्मल कैसे बना कर रखा जाए? आज हमारी जो संस्कृति की गंगोत्री से निकली हुई गंगा है, वह धीरे-धीरे मलिन होती जा रही है। गंगा और जमना की सफाई के लिए तो नेता लोग लगे हुए हैं, पर्यावरण के चिन्तक लगे हुए हैं, लेकिन जिनशासन की गंगा को मलिन होने से कैसे रोका जाए, उसके प्रदूषण को कैसे दूर किया जाय? इस चिन्ता का ही परिणाम था कि एक दिन जब हम लोग कुण्डलपुर में थे, रतनलाल जी बैनाड़ा, मूलचन्द जी लुहाड़िया और अन्य लोगों ने आकर हम लोगों के बीच यह बात रखी कि महाराज जी! हमें आज एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन करने की आवश्यकता है जिससे हम समाज को सही दिशा दे सकें, क्योंकि आज की अधिकतर पत्रपत्रिकाएँ एक-दूसरे की निन्दा और आलोचनाओं से ही भरी रहती हैं। उनके पास तथ्यपरक सामग्री का अभाव होता है। हम अगर समाज को जाग्रत करना चाहें, उसे सही तत्त्व का बोध कराना चाहें तो तथ्यपरक सामग्री को लोगों तक पहुँचाने के लिए हमारे पास एक पत्रिका होनी चाहिए। और सब लोगों ने मिलकर प्रो. रतनचन्द्र जी का नाम तय किया कि वे इस कार्य को बखूबी निभा सकते हैं।'

'आचार्यश्री के सामने जब यह बात रखी गई तो उन्होंने एक ही बात कही- 'क्या कोई श्रमण किसी पत्रिका का संचालक हो सकता है? क्या उसे किसी पत्रिका से जुड़ना चाहिए? हम लोगों ने भी कहा कि 'महाराज जी आपका कहना बिलकुल ठीक है, कोई श्रमण किसी पत्रिका का संचालक नहीं हो सकता, और उसे किसी पत्रिका से जुड़ना नहीं चाहिए, न ही हम ऐसा करने में कोई रुचि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखते हैं। लेकिन यदि कोई सत्श्रावक इस प्रकार का भाव करता है, ऐसे कार्यक्रम को हाथ में लेता है तो उसे अपना आशीर्वाद तो दे सकते हैं? आचार्य श्री बोले 'जरूर दे सकते हैं।' तो उन लोगों ने कहा कि महाराज! हम आपका वही आशीर्वाद चाहते हैं। और जब आचार्य महाराज का आशीर्वाद इन सबको मिल गया तो हम लोगों का हाथ कैसे पीछे रह सकता था? हम सबका आशीर्वाद तो ये अपने आप ही पा गये। ये कठिन परिश्रम करके 'जिनभाषित' को प्रकाशित कर रहे हैं। हमने उसे देखा है। उसमें काफी सामग्री है और मुझे आशा और विश्वास है कि यह पत्रिका सम्पूर्ण जैन समाज में अद्भुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगी और प्रचलित जन पत्रिकाओं में सर्वोच्च स्थान बना सकेगी।'

जिनवाणी माता की चिट्ठी

मुनिश्री प्रमाणसागर जी आगे बोले- 'सबसे मेरा यही कहना है कि पत्रिका अपने उद्देश्यों की पूर्ति में आगे बढ़ती रहे। हर व्यक्ति के घर में यह पत्रिका आनी चाहिए। पत्रिका को तुम और कुछ मत समझना। उसे तुम समझना कि यह जिनवाणी माता की चिट्ठी है। अगर महीने में एक अंक तुम्हारे घर में आता है तो यह मानना कि जिनवाणी माता की एक चिट्ठी तेरे घर आई है। वह देख, तेरे लिए क्या खबर भेज रही है। थोड़ा उसके सन्देशों को समझ और अपना सम्पर्क जिनवाणी माँ से बना, क्योंकि बेटा अगर माँ से ज्यादा समय तक बिछुड़ जाता है तो बेटे को जो दु:ख होता है सो होता है, माँ को भी तकलीफ होती है। कम से कम हमारे निमित्त से जिनवाणी माँ को कोई तकलीफ न हो, ऐसा प्रयत्न आप सबको करना चाहिए। और प्रत्येक घर में जिनवाणी माँ की चिट्ठी आये ऐसा प्रयत्न तो आप सबको करना ही चाहिए।

अन्त में मुनिश्री ने कहा- 'इस पत्रिका को और भी अधिक सुन्दर और लोकोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जाता रहेगा ऐसा मुझे पूरा विश्वास है।'

पूज्य एलक श्री निश्चय सागर जी ने भी 'जिनभाषित' के अंक की प्रशंसा की और सम्पादक प्रो. रतनचन्द्र जी तथा सहयोगी सम्पादकों को सुभाशीष प्रदान किया।

●

आदर्शकथा

नाम में कुछ नहीं

● *डॉ. जगदीश चन्द्र जैन*

तक्षशिला में कोई आचार्य अपने पाँच सौ शिष्यों को मन्त्र पढ़ा रहे थे। एक शिष्य का नाम था पापक। पापक को सब 'पापक-पापक' कहकर बुलाते थे।

एक दिन पापक ने सोचा- मेरा नाम अमंगलसूचक है, क्यों न मैं नाम बदलवा लूँ?

उसने आचार्य से जाकर कहा- 'आचार्य! मेरा नाम अच्छा नहीं। इसे बदल कर कोई दूसरा नाम रख दें।'

आचार्य ने कहा- 'तात! जाओ देश-विदेश में घूमकर अपनी इच्छानुसार कोई अच्छा-सा नाम छाँट लो। मैं नाम बदल दूँगा।'

पापक रास्ते के लिए कलेवा लेकर चल दिया।

गाँव-गाँव घूमता हुआ वह एक नगर में पहुँचा। वहाँ जीवक नाम के किसी पुरुष की मृत्यु हो गयी थी। पापक ने देखा कि जीवक के रिश्तेदार उसे श्मशान लिये जा रहे हैं। उसने कहा- 'भई! इस आदमी का क्या नाम था?'

'जीवक।'

'ऐं, जीवक! जीवक भी मरता है?'

'हाँ जीवक भी मरता है, अजीवक भी। नाम तो केवल व्यवहार के लिए रखा जाता है। क्या तू इतनी-सी बात भी नहीं जानता?'

पापक आगे बढ़ा।

जब वह नगर के अन्दर गया तो उसने एक दासी को देखा। दासी का मालिक उसे दरवाजे पर बैठाकर रस्सी से पीट रहा था।

पापक ने मालिक से पूछा - 'भई! इसे क्यों पीटते हो?'

मालूम हुआ कि उसने मजदूरी नहीं दी।

पापक ने पूछा -'दासी का क्या नाम है?'

'धनपाली।'

पापक ने कहा- 'धनपाली होकर भी यह मजदूरी लाकर नहीं देती?'

इस पर लोगों ने कहा - 'धनपाली-अधनपाली दोनों दरिद्र हो सकती हैं। नाम तो केवल व्यवहार के लिए होता है। क्या तुम इतना भी नहीं जानते?'

आगे चलकर पापक ने एक मार्गभ्रष्ट पथिक को देखा। उसे इधर-उधर घूमते-फिरते देख कर उसने पूछा- 'भई! क्या बात है?'

'मार्ग भूल गया हूँ।'

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'पन्थक।'

'ऐं, पन्थक भी रास्ता भूल जाते हैं?'

'इसमें कौन बड़ी बात है! पन्थक-अपन्थक, दोनों रास्ता भूलते हैं। नाम तो केवल व्यवहार के लिये रखा जाता है। तुम इतना भी नहीं जानते?'

पापक लौटकर आचार्य के पास आया। आचार्य ने पूछा- 'कहो वत्स! कौन-सा नाम पसन्द किया?'

पापक ने उत्तर दिया- 'आचार्य! जीवक-अजीवक दोनों मरते हैं। धनपाली-अधनपाली दोनों दरिद्र होते हैं। पन्थक-अपन्थक दोनों रास्ता भूल सकते हैं। नाम तो केवल व्यवहार के लिये रखा जाता है। नाम से सिद्धि नहीं होती, सिद्धि कर्म से होती है। आचार्य! मैं नाम नहीं बदलवाना चाहता।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र : धन्यवाद, सुझाव शिरोधार्य

'जिनभाषित' पत्रिका का अप्रैल 2001 का अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद! हालाँकि यह पत्रिका से स्पष्ट नहीं हो पाया कि यह कौन से नम्बर का अंक है। सम्भवतः यह प्रवेशांक ही होना चाहिए। यह जानकार बहुत प्रसन्नता हुई कि इस पत्रिका के सम्पादक तथा सभी सहयोगी सम्पादक बहुत ही विद्वान हैं। अतः यह अपेक्षा तो सदा रहेगी कि पत्रिका श्रेष्ठतम रूप धारण करे।

जैसा कि आप स्वयं भी जानते हैं कि आज जैन समाज में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई है। नित नयी पत्रिका उदय में आती है। ऐसी स्थिति में पत्रिका का स्तर बनाये रखना एक बड़ी चुनौती है। आपने भी नयी पत्रिका प्रारंभ की है। आपकी यह पत्रिका अन्य पत्रिकाओं से किस प्रकार हटकर होगी? इस पत्रिका का उद्देश्य क्या है? आदि बातों का प्रवेशांक में तो स्पष्टीकरण होना ही चाहिए, साथ ही आने वाले अंकों में वैसा झलकना भी चाहिए। आखिर नयी पत्रिका प्रकाशित करने की आवश्यकता क्यों हुई, इसका खुलासा होना चाहिए।

डॉ. अनिल कुमार जैन,
बी-26, सूर्यनारायण सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने, साबरमती, अहमदाबाद-380005

'जिनभाषित' का अप्रैल माह का अंक प्राप्त हुआ। चूँकि 'जिनभाषित' पहली बार देखा, इसके पूर्व नहीं, अतः शायद यही प्रथम अंक (प्रवेशांक) होगा। देखते ही और पढ़ने के बाद बहुत प्रसन्नता हुई। बधाइयाँ। इस प्रथम अंक ने ही मन मोह लिया। ऐसा लगा बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हुई है। सामग्री की गुणवत्ता से ही इसके चयन में विशेष सावधानी झलकती है। आपकी विद्वत्ता, लेखनी और प्रतिभाचातुर्य का लाभ इस माध्यम से साहित्य और समाज को बहुत पहले ही प्राप्ति का प्रारंभ होना चाहिए था। पर 'देर आयद दुरुस्त आयद' कहावत चरितार्थ हो रही है। मेरी शुभकामनाएँ हैं। यह दीर्घायुष्क हो 'तथा यथा नाम तथा' बना रहे। अन्य की तरह 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' न हों और किसी या किन्हीं विवादों में कभी न उलझें। सभी को सदा-सर्वदा यह पत्रिका अपना नाम सार्थक करने वाली लगती रहे। मंगल कामनाएँ।

डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'
अनेकान्तभवनम्, बी-23/45,
पी-6, शारदा नगर, नवाबगंज मार्ग, वाराणसी-221010

पूर्व में 'जिनभाषित' का प्रवेशांक देखा था। इस बार मई-2001 श्रुतपंचमी का अंक पढ़ने को मिला। दिगम्बर जैन समाज में 'जिनभाषित' एक विशाल रिक्तता की पूर्ति करेगा। आज की पत्र-पत्रिकाएँ तत्त्वज्ञान, प्रबल बौद्धिकता तथा वैचारिकता प्रदान करने की बजाय निषेधात्मक आलोचना की शिकार हैं। समालोचना तो आवश्यक है किन्तु सर्जनात्मक आलोचना (Creative criticism) का मार्ग अपनाना सरल कार्य नहीं, शायद इसीलिए लोग इसे अपना नहीं पाते। 'जिनभाषित' से मुझमें उम्मीद जागी है। इसका स्वाध्याय करने से लगा कि अवश्य ही यह पत्रिका न तो समस्या से मुँह फेरेगी और न ही मात्र किसी भी स्थिति की आलोचना करेगी। बल्कि एक तीसरी दृष्टि देगी जो हमें समाधान देगी। आदरणीय रतनलाल जी बैनाड़ा का तत्त्वप्रेम और उससे संपोषित शंका-समाधान समाज में तत्त्वज्ञान को जीवन्त रखेगा। आप इसी प्रकार स्तरीय आलेख तथा अन्य स्तंभ प्रकाशित करते रहें। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

कुमार अनेकान्त जैन

'जिनभाषित' (2001 अप्रैल) का अंक पहली बार मुझे प्राप्त हुआ और इसे देखने-पढ़ने का मौका मिला। यूँ तो पत्रिकाएँ और जर्नल्स निकलते ही रहते हैं, पर 'जिनभाषित' सबसे कुछ अलग सा लगा। इसमें सब कुछ है और सभी के लिए है। मध्यप्रदेश से और भी जैन पत्रिकाएँ निकलती होंगी, पर आप अपनी पत्रिका के माध्यम से जैन समाज और बुद्धिजीवी वर्ग की जो सेवा कर रहे हैं वह प्रशंसनीय है। सभी लेख, कविता और संस्मरण पढ़ने योग्य हैं, जिनसे हम कुछ न कुछ सीख सकते हैं। बधाई।

डॉ. विनोद कुमार तिवारी
रीडर व अध्यक्ष- इतिहास विभाग
यू.आर. कालेज,
रोसड़ा-848210, (समस्तीपुर) बिहार

'जिनभाषित' का मई 2001 का अंक प्राप्त हुआ। सज्जा नयनाभिराम है और सामग्री उच्च स्तरीय एवं पठनीय। आध्यात्मिकता के विवेकपूर्ण प्रचार-प्रसार एवं जैन सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण की चिन्ता पर आधारित आपका साहसिक, सामयिक एवं मार्मिक सम्पादकीय 'श्रुतपञ्चमीः श्रुत की निश्चय पूजा आवश्यक' आँखे खोलने वाला है। मुझे विश्वास है कि आपके कुशल एवं सक्षम संपादकत्व में प्रकाशित 'जिनभाषित' आधुनिक विज्ञान और विवेक को ध्यान में रखते हुए जैन-संस्कृति और अध्यात्म के प्रचार-प्रसार में अपनी प्रभावी भूमिका निभायेगा।

श्रीमती विमला जैन,
जिला एवं सत्र न्यायाधीश, 30,
निशात कालोनी, भोपाल-03

'जिनभाषित' का अंक पाया। आनन्दम्। उसे देख अप्रैल अंक न मिलने का विषाद उभरा। 'जिनभाषित' परिवार को नमन।

प्रा. डॉ. विश्वास पाटील,
34, कृष्णाम्बरी,
सरस्वती कालोनी,
शहादा (नंदुरबार)-425409

आपके द्वारा प्रेषित और सुसम्पादित 'जिनभाषित' का मई 2001 का अंक मिला। आभारी हूँ। आपका 2/5 को गंजबासौदा में श्री गीता-ज्ञान-आराधना-स्वतंत्र पारमार्थिक न्यास की ओर से सार्वजनिक सम्मान किये जाने का समाचार विशेष आह्लादकारी रहा। अभिनन्दन, बधाई, हार्दिक शुभकामना कृपया स्वीकार करें।

डॉ. शशिकान्त जैन एवं रमाकांत जैन
सम्पादक- शोधादर्श, ज्योति निकुंज,
चारबाग, लखनऊ-226004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जिनभाषित' का मई 2001 का अंक मिला। इस सौजन्य हेतु धन्यवाद। यदि इस अंक को आधार माने तो संयोजना बहुत सुन्दर एवं सौम्य है। साज-सज्जा नयनाभिराम है। कटिंग में प्रेस की थोड़ी असावधानी रह गई है, वह आपके दृष्टिपथ में होगी। अगले अंक में सुधर जावेगी। वर्ष तथा अंक संख्या भी डालनी चाहिए। आचार्यश्री का मोरा जी भवन में हुई प्रथम वाचना के परिसमापन पर प्रदत्त प्रवचन आज भी स्मृतियों में मन को गुदागुदा जाता है। आचार्यश्री आचार्यश्री ही हैं।

गुलाबचन्द्र आदित्य,
आदित्य भवन, जैन मंदिर रोड,
शाहजहांनाबाद, बजरिया,
भोपाल-462001

Received the copy of "JINABHASHITA" May 2001. The articles are selective, attractive and deal with important topics. The presentation is neat and impressive. It will certainly serve the needs of the Jaina society.

Dr. S.P. Patil, Vaishali, 5 Ghevare plots Samarth Chowk, South Shivaji nagar, Sangli-416416

जिनभाषित का मई 2001 अंक भेजने की कृपा की, धन्यवाद। अंक में दी हुई सामग्री पठनीय ही नहीं, प्रशंसनीय भी है। पत्रिका का आकार, रूपसज्जा, संयोजन कलात्मक तथा आकर्षक है। विशेष समाचार में 'गोरक्षा का स्तुत्य प्रयास' पढ़कर प्रेरणा मिली। वास्तव में व्यावहारिक कार्य ही जैनधर्म की अहिंसा के प्रचार का सही प्रयास है। सम्पादकीय में श्रुतपंचमी पर सारगर्भित विचार मिले। 'ज्ञान की अनुभूति' से अन्तःकरण जाग्रत हुआ। 'ऋद्धि और सिद्धि' से धर्म के प्रति सम्यक श्रद्धा में दृढ़ता आई। अन्य लेख भी ज्ञानवर्धक तथा संस्कृति एवं नैतिकता के संरक्षण हेतु प्रेरणा स्रोत हैं। आप अपनी पत्रिका के माध्यम से जैन समाज और बुद्धिजीवी वर्ग की जो सेवा कर रहे हैं, वह स्तुत्य है। आपको व समस्त लेखकों को साधुवाद।

डॉ. विमला जैन , 1/344, सुहाग नगर,
फीरोजाबाद-283203 उ.प्र.

'जिनभाषित' के अप्रैल एवं मई 2001 के अंक प्राप्त हुए। हार्दिक धन्यवाद। पत्रिका तो अपने-आप में अद्भुत है। पत्रिका के लेख असाधारण हैं। यही इसकी विशेषता है। मई 2001 के अंक में श्रुतपञ्चमी से सम्बन्धित लेख पढ़कर अत्यंत खुशी हुई। लेखों का चयन एवं प्रस्तुतीकरण बहुत ही अच्छा है। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

कु. बबीता जैन (शोध छात्रा),
पुत्री- डा. आर.एस. जैन, मामा का बाजार,
जैन मंदिर के पास, हैदरगंज लश्कर,
ग्वालियर-949001

'जिनभाषित' पत्रिका प्राप्त हुई। सामग्री पठनीय है। आचार्य श्री विद्यासागर जी के प्रवचनों के समावेश से पत्रिका का गौरव बढ़ गया है। बालवार्ता और हास्य व्यंग्य रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। बधाई और मंगल कामना स्वीकारें।

ताराचन्द जैन अग्रवाल
पचेवर (टोंक)-304509 राजस्थान

आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित 'जिनभाषित' पत्रिका का मई माह का अंक प्राप्त हुआ। इस अंक का महान आकर्षण श्री गोम्मट स्वामी के अद्वितीय मनोहारी जिन-बिम्ब का छाया प्रतिबिम्ब है जो अनायास ही मुग्ध कर देता है। उस महान् कलाकार की अनुपमेय, सातिशय कलाकृति ने पत्रिका में चार चाँद लगा दिये हैं। छपाई, सफाई, गेटअप आदि तो अतिसुन्दर हैं ही, पर सबसे महत्त्वपूर्ण हैं अच्छे-अच्छे मनीषियों की कृतियाँ।

सम्पादकीय पढ़कर तो अति प्रसन्नता हुई। श्रुत पंचमी के माध्यम से श्रुतावतार के इतिहास के साथ द्रव्यश्रुत-भावश्रुत की प्रकृष्टता का दिग्दर्शन करते हुए जिनवाणी के साथ मनमानी करने वालों के मुखौटों का उद्घाटन कर स्याद्वाद-अनेकान्त का अच्छा विवेचन किया है। मैं उन सभी विज्ञजनों की, जो सम्पादक मंडल में हैं, भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्तुंग शिखर की ओर बढ़ने की मंगल कामना करता हूँ।

पं. पूर्णचन्द्र 'सुमन' शास्त्री,
काव्यतीर्थ, सुमन कुटीर,
जैन मंदिर मार्ग,
दुर्ग-491001 (छ.ग.)

'जिनभाषित' का मई 2001 का श्रुत पञ्चमी अंक पढ़ा तो प्रथमतः यह विचार मन में आया कि इतना उत्कृष्ट साहित्य जो अध्यात्म से परिपूर्ण है, पत्रिका में देकर आपने समाज का बड़ा उपकार किया है। 'जैन आचार में इन्द्रिय दमन का मनोविज्ञान' मनोविश्लेषक फ्रायड की खोखली अवधारणा का सुन्दर, सारगर्भित एवं सटीक जवाब है। आचार्यश्री के युगान्तरकारी महाकाव्य 'मूक माटी' के प्रशासन और न्याय के संदर्भ में उद्घाटित सूत्रों को टिप्पणी के साथ सहज ग्राह्य बना दिया गया है। 'सफेद शेर की नस्ल' व्यंग्यकथा हृदय को गुदगुदाने के साथ मन को झकझोरती भी है। श्री अशोक शर्मा द्वारा रचित गीत के सभी पद हृदय को छू लेने वाले हैं। आपको कोटिशः बधाई।

अरविन्द फुसकेले, राजस्व निरीक्षक,
ई.डब्ल्यू.एस. 541, कोटरा,
भोपाल-462003

लोकदृष्टि

आचार्य श्री विद्यासागर जी एक उत्कृष्ट संत तो हैं ही, एक कुशल कवि, वक्ता और विचारक भी हैं। काव्यरुचि और साहित्यानुराग उन्हें विरासत में मिला है। उनके दीक्षागुरु स्वयं आचार्य ज्ञानसागर जी मेधावी कवि थे, जिन्होंने संस्कृत साहित्य को अनेक महाकाव्यों के द्वारा समृद्ध किया। आचार्यश्री के कंठ में भी अपने गुरु के समान ही सरस्वती का निवास है। इसे गुरु का वरदान कहें या पूर्व पुण्योदय कि जिससे उनके बोलने, गुनगुनाने तथा यहाँ तक कि चलने उठने-बैठने में भी एक लय अनस्यूत है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन,
फीरोजाबाद (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

युगस्त्रष्टा महर्षि का दैगम्बरी-दीक्षा-दिवस

आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी ने बड़े पुण्य कमाये हैं। उसे परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी का मुनि-दीक्षादिवस देखने को मिला है। विक्रम संवत् 2025 (सन् 1968) में इसी दिन संस्कृत के महान् कवि और यशस्वी दिगम्बराचार्य परमपूज्य ज्ञानसागर जी महाराज ने उन्हें अजमेर (राज.) में मुनिपद का महामहिम उपहार प्रदान किया था। इस पद को जितनी पूज्यता, श्रद्धास्पदता और प्रामाणिकता आचार्य श्री विद्यासागर जी ने इस युग में प्रदान की है उसकी चर्चा एक किंवदन्ती की तरह भारतीय इतिहास में युगों तक होती रहेगी।

बाल, युवा, वृद्ध सभी को उनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व ने सम्मोहित किया है। उनकी निर्विकार, आत्मप्रभुत्वमयी, अपराजेय छबि का प्रभाव ऐसा आकर्षक है कि जो भी उसकी झलक पाता है, उसके अन्तस् में धर्म के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ती है, आत्मा के अस्तित्व में विश्वास पैदा हो जाता है, मोक्ष मार्ग सारभूत प्रतीत होने लगता है, अनेक लोगों क मन की विषयवासनाएँ विगलित हो जाती हैं और वैराग्य की गंगा प्रवाहित होने लगती है।

क्या यह अद्भुत नहीं है कि इस वैज्ञानिक चमत्कारों के युग में जब चारों तरफ भोगविलास का वातावरण उत्कर्ष पर हो, भोग की एक से एक मादक उत्तेजक और इन्द्रियाह्लादक सामग्री आँखों के सामने आ रही हो, इन्द्रियसुख को ही सारभूत सिद्ध करने वाली विचारधारा चारों तरफ प्रभावी हो, विषयभोग करते-करते जराग्रस्त हो जाने वाले तत्त्वज्ञानी भी जब विषयवासनाओं से मुक्ति प्राप्त न कर पा रहे हों, तब अपार वैभव के बीच में जनमे, आधुनिक वातावरण में पले, उच्चतम आधुनिक शिक्षाप्राप्त, यौवन के देहली पर पहुँचे युवागण आचार्यश्री के दर्शन पाते ही वैराग्य से भर जाते हैं और सहज उपलब्ध विषयभोगों का परित्याग कर मोक्षमार्ग ग्रहण कर लेते हैं। इस समय आचार्यश्री के संघ में मुनियों, आर्यिकाओं, एलकों और क्षुल्लकों की संख्या दो सौ को पार कर गई है, जो सभी बालब्रह्मचारी, दृढ़ संयमी, कठोरतपस्वी और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं।

आचार्यश्री ने धर्म को जीवन्त बनाया है। उनके द्वारा जैन शासन की जो प्रभावना हो रही है वह अभूतपूर्व है। आचार्य श्री के तप एवं साधुत्व जितने प्रखर हैं उतना ही गम्भीर है उनका आगमज्ञान। उन्होंने अपने स्वर्गीय गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी से संस्कृत, प्राकृत, न्याय, व्याकरण, साहित्य, आगम तथा अध्यात्म का अगाध वैदुष्य प्राप्त किया है और जब से उन्हें अपने गुरु का आशीर्वाद मिला है तभी से निरन्तर स्वाध्याय में लीन रहते हैं। वे लगभग सभी महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का गहन अनुशीलन कर चुके हैं। उनका अध्ययन पाण्डित्यप्रधान नहीं, अपितु गवेषणात्मक है। एक शोधार्थी की सूक्ष्म दृष्टि से वे स्वाध्याय करते हैं और आगम के अनावृत, अनुन्मीलित तथ्यों को प्रकाशित करते हैं। उनकी प्रवचन शैली बड़ी रोचक है।

निर्विकारताप्रसूत आकर्षण

पहले मुझे साधु-संन्यासियों में आस्था नहीं थी। सोचता था कि ये सांसारिक वैभव को पाने में असफल रहने के कारण साधु बन गये हैं। इन का ज्ञान और प्रवचन खोखला है। ऊपर से संसार के निस्सार होने की बात करते हैं, किन्तु भीतर इन्हें संसार ही सारभूत दिखाई देता है। ये लोकैषणा के मारे हैं, ख्याति और पूजा के भूखे हैं। किसी-किसी में दिखाई देनेवाला शिथिलाचार ऐसा सोचने पर मजबूर करता था। किन्तु जिस दिन विद्यासागर जी के प्रथम दर्शन किये, मेरी धारणा पर जबर्दस्त कुठाराघात हुआ। सब कुछ उलट-पलट गया। प्रतीत हुआ कि जो मैं सोचता था वह सर्वथा सत्य नहीं था। साधुओं के पास तो ऐसा वैभव होता है, जिसके सामने संसार का वैभव कुछ भी मूल्य नहीं रखता। वह तृण के समान तुच्छ होता है। साधुओं का वैभव लोकोत्तर होता है। वह दिखाई नहीं देता, लेकिन मन को चकित करता है, हृदय को खींचता है, मस्तक को झुका देता है, रोम-रोम को आह्लादित कर देता है।

किन्तु यह न समझ पाया कि वह लोकोत्तर वैभव है क्या, जिसके कारण आचार्य श्री विद्यासागर जी के सामने बड़े-बड़े धनपति अपने को दरिद्र महसूस करने लगते हैं, दिग्गज पण्डित अपने को पहली कक्षा में बैठा हुआ पाते हैं, सत्ताधीश उनके चरणों की सेवा के लिए उतावले हो जाते हैं? मैंने खूब ऊहापोह किया, चिन्तनमनन किया, छानबीन की, जाँच पड़ताल की। एक ही उत्तर पाया कि निर्विकारता या वीतरागता ही वह लोकोत्तर वैभव है जिसे पाकर आत्मा लोकोत्तर बन जाती है, अद्भुत बन जाती है। निर्विकारता से ही आत्मा में औदात्त्य आता है, प्रभुता आती है, दैन्यभाव और पारतन्त्र्य का विनाश होता है। यह औदात्त्य यह आत्मप्रभुता, यह अदैन्य, यह आत्मस्वातन्त्र्य ही आत्मा को लोकोत्तर बनाता है, अद्भुत बनाता है, आकर्षक बनाता है, आह्लादक बनाता है। यह लोकोत्तर सम्पदा ही लोगों के मस्तक को श्रद्धा से अवनत कर देती है- 'एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।'

मोहरागद्वेषविकार आत्मा में क्षुद्रता, तुच्छता, दीनता, दासता, अश्लीलता, बीभत्सता, नृशंसता और लम्पटता का संचार करते हैं। वे क्षुद्र इच्छाओं को जन्म देते हैं, जिन्हें पूर्ण करने के लिए मनुष्य नीच से नीच प्रवृत्ति करने पर उतर आता है, आत्मस्वातन्त्र्य, आत्मप्रभुता, आत्मसम्मान खोने के लिए राजी हो जाता है। दीनवृत्ति, दासवृत्ति स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। भर्तृहरि ने कहा है- 'आशाया ये दासास्ते दासा सर्वलोकस्य' जो इच्छाओं के दास होते हैं वे सारी दुनिया के दास बन जाते हैं। और दासता की वृत्ति, दीनता की वृत्ति अर्थात् आत्मस्वातन्त्र्य और आत्मप्रभुता की शून्यता वे वृत्तियाँ हैं जो सभी को अत्यन्त बीभत्स और लज्जास्पद लगती हैं। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनसे सभी नफरत करते हैं।

जिस आत्मा के मोहरागद्वेषविकार विसर्जित हो जाते हैं उसकी क्षुद्र इच्छाएँ विगलित हो जाती हैं। उसमें दीनवृत्ति और दासवृत्ति का संचार नहीं होता। उसमें आत्मस्वातन्त्र्य का सूर्य उदित होता है। उसमें आत्मप्रभुता का मेरु विजृम्भित होता है। वह अलौकिक सम्पदा का स्वामी बन जाता है। भर्तृहरि अपनी पूर्वोक्त सूक्ति पूर्ण करते हुए कहते हैं - 'आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः' जो इच्छाओं को दास बना लेता है सारी दुनिया उसकी दास बन जाती है। एक हिन्दी-कवि ने भी कहा है-

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए वे ही शाहंशाह॥

निर्विकार हो जाने से, इच्छाओं को दास बना लेने से जो आत्मप्रभुता प्रकट होती है वही वह वैशिष्ट्य है जो आत्मा को उदात्त और लोकोत्तर बना देता है। क्योंकि दुनिया की सारी आत्माएँ अनादिकाल से इस वैशिष्ट्य से वंचित हैं और उसे पाना उन्हें अत्यंत दुष्कर प्रतीत होता है। इसलिए जो इसे पा लेता है वह अद्भुत लगने लगता है। लोग उसे अपने से बहुत ऊपर उठा हुआ महसूस करने लगते हैं। वे अपनी तुलना उसके चरणों की धूल से भी नहीं कर पाते। इसीलिए वह आकर्षक लगता है, प्रिय लगता है, उसके दर्शन की लालसा उत्पन्न होती है।

यह निर्विकारता, निःस्पृहता या आत्मप्रभुता ही वह वैभव है जो आचार्य श्री विद्यासागर जी के पास है। इस लोकोत्तर वैभव के ही कारण बड़े-बड़े करोड़पति उनके सामने अपने को भिखारी सा महसूस करने लगते हैं, बड़े-बड़े विद्वान बालकों के समान तुतलाने लगते हैं और मुख्यमंत्री-प्रधानमंत्री उनका कोई आदेश और आशीर्वाद पाने के लिए नतमस्तक हो जाते हैं।

आचार्य श्री विद्यासागर जी में जो आकर्षण है, उनके दर्शन में जो आह्लादकता है, उन्हें देखकर लोगों में जो अपार श्रद्धा और भक्ति उमड़ पड़ती है उसका यही रहस्य है। दुर्लभ निर्विकारता ने उनके योगों को, मनवचनकाय की प्रवृत्तियों को सरल, स्वच्छ और रमणीय बना दिया है। उनके चलने का ढंग, उनके बोलने की शैली, उनके देखने और सुनने का तरीका, उनके हसने और मुस्कराने का अंदाज, उनके प्रवचन की कला, उनके हावभाव और मुद्राएँ अतीव औदात्त्य, लालित्य, माधुर्य और गाम्भीर्य से मंडित है। उनके हर परिष्पन्द में साहित्य है, काव्यात्मकता है, संगीत है, मंगल है। उनकी छबि में भावी तीर्थंकरत्व अँगड़ाइयाँ लेता नजर आता है। इसीलिए लोगों को उनके दर्शन प्रिय हैं,उनकी छबि सुखद लगती है, उनका सान्निध्य अहोभाग्य की अनुभूति देता है। आचार्यश्री दर्शनार्थियों से कुछ बोले या न बोलें, उनकी तरफ देखें या न देखें, वे उन्हें घंटों एकटक निहारते रहना चाहते हैं। फिर यदि उनकी तरफ आचार्यश्री की आँखें उठ गईं तो इतना आह्लाद होता है जैसे देह को पुण्यों ने छू लिया हो। और यदि उनसे कुछ बात कर ली तो लगता है जैसे अमृत की धाराओं में नहा लिया हो। और कहीं उनकी तरफ हलकी सी मुस्कान बिखेर दी, तब तो कहना ही क्या है, वे मालामाल हो जाते हैं।

आगमसम्मत कठोरचर्या

आचार्यश्री के प्रति दुर्निवार आकर्षण और भक्ति का दूसरा कारण है उनकी आगमसम्मत कठोरचर्या। वर्तमान में तो यह आकर्षण का महत्त्वपूर्ण केन्द्र इसलिए बन गई है कि चारों तरफ दिखलाई देने वाले शिथिलाचार ने जिनधर्मानुरागियों को बड़ी निराशा और वितृष्णा से भर दिया है। ऐसे वितृष्णाजनक वातावरण में आचार्यश्री का कठोर संयम-तप, मूलगुणों का निरतिचारपालन लोगों को बड़ी राहत प्रदान करता है। वे आश्वस्त हो जाते हैं कि जिनतीर्थ को पतन से बचाने के लिए एक मेरु उसे अपनी बाहों में थामे खड़ा हुआ है। उन्हें इस बात का एक दृष्टांत सामने मौजूद दिखाई देता है कि जिनप्रणीत मोक्षमार्ग का यथावत् आचरण आज भी संभव है। आज भी कुमार रहते हुए भरपूर तारुण्य में दुर्निवार काम को जीतना मुमकिन है। नग्न रहकर मन और तन को निर्विकार रखने की साधना आज भी की जा सकती है। अंगों को ठिठुरा देने वाली ठंड में बिना रजाई ओढ़े, बिना अग्नि या हीटर जलाये नग्न तख्त पर नग्न शरीर सोकर आवश्यक निद्रा ली जा सकती है। इसी प्रकार देह को झुलसाने वाली गर्मी में पंखा-कूलर आदि के बिना दुपहरियाँ और रात्रियाँ गुजारी जा सकती हैं। गर्मी के मौसम में भी दिन में केवल एक बार आहार और जल लेकर तथा बिना नहाये रहा जा सकता है। अत्यन्त पीड़ादायी रोग हो जाने पर भी धैर्यपूर्वक उसे सहने की साधना की जा सकती है।

आचार्यश्री की इस आदर्श दिगम्बरचर्या ने जैनेतर साधुओं को भी अन्तस्तल तक प्रभावित किया है और उनके मन में जैनधर्म के प्रति आदर जगाया है। अमरकंटक में सनातनधर्मी साधुओं के आधुनिक सुविधासम्पन्न विशाल आश्रम हैं। उनमें रहने वाले साधु वेद-उपनिषद् गीता-रामायण, आदि में निष्णात हैं। धर्मप्रचार के लिए विदेश आते जाते रहते हैं। जब आचार्यश्री का प्रथम विहार अमरकंटक की ओर हुआ और सनातनधर्मी साधुओं को पता चला कि विद्यासागर नाम के एक दिगम्बराचार्य दिगम्बर साधुओं के विशाल संघ के साथ कड़कती ठंड में अमरकंटक आ रहे हैं तो वे उन्हें देखने के लिए पहुँचे और अमरकंटक की जिस तीक्ष्ण ठंड में ये साधु शरीर को कम्बलों से ढँके हुए रहते थे उसमें सम्पूर्ण संघ को सर्वथा नग्न अवस्था में देखकर चकित रह गये। दिगम्बर साधुओं के तप को देखकर उनके मन में सौहार्द उमड़ आया। आचार्यश्री को निकट से देखने के लिए वे उनके पास आने लगे। धर्म, दर्शन, संयम, तप आदि पर गूढ़ चर्चाएँ करते थे और हर बार प्रसन्न होकर जाते थे। किन्तु उनके मन में एक शंका थी कि कहीं ये दिगम्बर मुनि ठंड से बचने के लिए रात में कम्बल, रजाई आदि तो नहीं ओढ़ लेते? इस बात की परीक्षा के लिए कुछ साधु एक दिन दस-ग्यारह बजे रात को वसतिका में आये और जब उन्होंने देखा कि आचार्यश्री नग्न तख्त पर बिलकुल नग्न सो रहे हैं, वस्त्र का नामोनिशाँ भी वहाँ नहीं है, केवल वे ही नहीं, उनके समस्त शिष्य भी उसी अवस्था में सोये हुए हैं तब उनका हृदय आचार्यश्री और उनके संघ की निर्व्याज तपश्चर्या से और भी अभिभूत हो गया। आचार्यश्री के प्रति उनका मानस बहुत ही विनयशील था। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। गतवर्ष अक्टूबर माह में मैं अमरकंटक में था। रात्रि को लगभग सात बजे आचार्यश्री के चरणों में बैठा था। उसी समय तीन-चार वृद्ध एवं युवा सनातनधर्मी साधु आये और 'नमो दिगम्बराय' कहकर नीचे बिछी चटाई पर बैठ गये। बड़े ही सौमनस्य से दार्शनिक चर्चाएँ हुईं। पश्चात् जब वे जाने लगे तब पुनः मस्तक झुकाकर उन्होंने 'नमो दिगम्बराय' कहकर विनय प्रदर्शित की। मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभव किया कि आचार्यश्री की जिनागमसम्मत निर्व्याज दिगम्बरचर्या जैनेतरों को भी आकृष्ट करती है।

चामत्कारिक प्रयोगों से विरक्ति

आचार्यश्री चामत्कारिक प्रयोगों में रुचि नहीं रखते। जहाँ कतिपय आधुनिक जैनसाधुओं में मन्त्रतन्त्र के द्वारा मनोकामनाएँ पूर्ण करने का प्रलोभन देकर भीड़ जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, वहाँ आचार्यश्री इसे मुनिधर्म के सर्वथा विरुद्ध बतलाते हैं और इसका सख्ती से निषेध करते हैं। उनका कहना है कि सांसारिक अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं के लिए अपने ही शुभाशुभ भावों से अर्जित कर्म उत्तरदायी हैं। अतः प्रतिकूलताओं का विनाश करने के लिए शुभ और शुद्ध भावों का पौरुष करना चाहिए।

वे अपने साथ चामत्कारिक अफवाहें जोड़े जाने को भी पसन्द नहीं करते। प्रायः अतिश्रद्धालु भक्त अपने गुरु की महिमा बढ़ाने के लिए उनके साथ चामत्कारिक अफवाहें जोड़ देते हैं। लगभग बीस साल पहले की बात है। नैनागिरि के चातुर्मास के समय जंगल के बीच स्थित मन्दिर में आचार्यश्री का प्रवचन होता था। वहाँ दो सर्प एक बिल में बैठे हुए दिखाई देते थे। यह देखकर लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि इन सर्पों का आचार्यश्री से कोई पूर्वजन्म का सम्बन्ध है। वे भी उनका प्रवचन सुनने आते हैं। यह बात मेरे गले नहीं उतरी। मैंने सोचा यह बात आचार्यश्री से ही स्पष्ट कर लेनी चाहिए। एक दिन मैंने उनसे विनयपूर्वक पूछा - 'महाराज जी, लोग कहते हैं कि आप जहाँ प्रवचन करते हैं वहाँ दो सर्प भी प्रतिदिन आते हैं, क्या यह सच है? महाराज जी मुस्कुराये और बोले- 'मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ सर्प नहीं आते, जहाँ सर्प रहते हैं वहाँ मैं पहुँच जाता हूँ। कितनी बेलाग बात थी। कोई दूसरा साधु होता तो लोगों के द्वारा फैलायी इस अफवाह का अपना प्रभाव बढ़ाने में उपयोग कर सकता था। किन्तु आचार्यश्री की वीतरागता को ऐसा करना गवारा नहीं हुआ।

सुहासशीलता

आचार्यश्री की एक बहुत बड़ी विशेषता है सुहासशीलता। उनके वार्तालाप और प्रवचन में सुहास का प्रचुर पुट रहता है। उनकी उपमाएँ, उनके दृष्टान्त, उनकी लोकोक्तियाँ, उनके मुहावरे मधुर व्यंग्य और हास्य से परिपूर्ण होते हैं जिससे श्रोता आनन्द का अनुभव करते हुए उनके उपदेश के रहस्य को हसते-हसते ग्रहण कर लेते हैं। आगम में इसे वक्ता का एक महत्त्वपूर्ण गुण माना गया है। एक बार व्यक्तिगत चर्चा में किसी ने कहा कि आचार्य जयसेन ने तो शुभोपयोग को परम्परया मोक्ष का हेंतु बतलाया है, किन्तु अमृतचन्द्र ने नहीं बतलाया। आचार्यश्री सुहासपूर्वक बोले- 'वे जनता पार्टी और कांग्रेस के समान परस्पर विरोधी दलों के सदस्य थोड़े ही हैं जो एक-दूसरे के विरुद्ध बात करेंगे। आचार्य अमृतचन्द्र ने भी शुभोपयोग को परम्परया मोक्ष का हेतु कहा है।'

एक बार मैंने प्रसंगवश आचार्यश्री से कहा कि भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है - 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' (धन होने पर आदमी में सभी गुण दिखाई देने लगते हैं)। आचार्यश्री तुरन्त बोले उमास्वामी जी ने भी कहा है - 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।' इस सूत्र के शब्दों से आचार्यश्री यह अर्थ व्यक्त करना चाहते थे कि 'द्रव्य अर्थात् धन का आश्रय पाकर गुणहीन भी गुणवान बन जाते हैं।' यद्यपि यह सूत्र का मुख्य अर्थ नहीं है, किन्तु आचार्यश्री ने शब्दों की अनेकार्थकता के आधार पर इससे एक लौकिक सत्य की भी व्यंजना कर डाली। यह उनकी तीक्ष्ण साहित्यिक प्रतिभा पर आश्रित सुहासशीलता का उदाहरण है।

स्मित मुखमुद्रा

मुस्कानयुक्त मुखमुद्रा आचार्यश्री का एक अन्य आकर्षक और आह्लादक गुण है। ओशो रजनीश जो मूलतः जैन थे, उनकी कुछ बातें युक्तिसंगत भी होती थीं। उन्होंने एक जगह लिखा है कि तीर्थंकर प्रतिमाओं की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी प्रसन्न मुद्रा, क्योंकि जिनके भीतर आत्मिक आनंद छलक रहा हो उनके मुख पर विषाद, शोक, उदासी या खिन्नता की छाया रह ही नहीं सकती। आत्मिक आनंद का आवेग मुख को प्रसन्न बना देगा। इस आत्मिक आनंद की अभिव्यक्ति ही तीर्थंकर प्रतिमाओं की प्रसन्न मुखमुद्रा का रहस्य है। ओशो रजनीश की यह बात मुझे ग्राह्य प्रतीत हुई। मैं भी मानता हूँ कि जो साधु कठोर तप करते हुए, परीषहों को सहते हुए भी आत्मानन्द की अनुभूति में डूबा हुआ है उसके मुख पर कभी पीड़ा, उदासी, चिन्ता या आक्रोश की छाया नहीं रह सकती। उसका मुख-मंडल सदा मधुर मुस्कान से ही अभिमंडित रह सकता है। कुछ साधुओं के चेहरे देखकर तो डर लगता है, उनके पास जाने की इच्छा नहीं होती। वे मुँह को ऐसा बनाकर बैठते हैं जैसे किसी का मातम मना रहे हों अथवा मुनिचर्या उनके लिए एक बोझ बन गई हो या वे जीवन में विकट समस्याओं का सामना कर रहे हों। वे सोचते हैं कि मुख पर प्रसन्नता रहना सराग होने का लक्षण है। इसलिए वे मुख को मुरझाया हुआ रखते हैं, उदास बनाकर रखते हैं, ताकि वीतरागता या उदासीनता झलके। किन्तु यह बिलकुल उल्टा है। इससे तो यही सूचित होता है कि अन्तस् में वीतरागता या उदासीनता का अभाव है। इसी कारण मन को आत्मानंद की अनुभूति न होकर पीड़ा की अनुभूति हो रही है, उसी के कारण मुख म्लान, उदास और अप्रसन्न है। जिसके अन्तस् में वीतरागता या उदासीनता होती है, वही तो आत्मानन्द की अनुभूति करता है और उसी के मुख पर प्रसन्नता की झलक रह सकती है।

एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है- 'Smiling is the first fundamental principle of human behaviour' अर्थात् मुस्कराना मानवीय आचरण का पहला मौलिक सिद्धान्त है। तब साधु का तो यह और भी प्रमुख गुण बन जाता है। क्योंकि मुस्कान अभय, आश्वासन (सान्त्वना), वात्सल्य, क्षमा और मार्दव की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक शक्तिशाली मनोवैज्ञानिक साधन है। यह अहिंसा की सबसे सरल और प्राथमिक अभिव्यक्ति है। इसलिए आचार्यश्री के मुखपर प्रकट मुस्कान उनकी अन्तरंग वीतरागता और तज्जन्य आत्मानन्दानुभूति का स्वाभाविक परिणाम है। उसमें सांसारिक दुःखदर्दों से पीड़ित दर्शनार्थियों के पीड़ाहरण की अद्भुत शक्ति है।

जिनागम का अवर्णवाद असह्य

आचार्यश्री को जिनागम का अवर्णवाद असह्य है। एक श्वेताम्बर विद्वान ने 'जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ हाल में ही लिखा है। उसमें उक्त विद्वान् ने षट्खण्डागम, कसायपाहुड, मूलाचार, भगवती आराधना, आदि सभी प्रमुख दिगम्बर ग्रन्थों को यापनीय आचार्यों द्वारा रचित तथा दिगम्बर आम्नाय को आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शताब्दी ई. में प्रवर्तित सिद्ध करने की चेष्टा की है। इससे आचार्यश्री के हृदय को अत्यंत पीड़ा पहुँची। उनकी इच्छा हुई कि कोई दिगम्बर विद्वान् इसका सटीक जवाब दे। यह कार्य उन्होंने मुझे सौंपा। लगभग उसी समय पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज और अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद् ने भी मुझसे यह कार्य करने का आग्रह किया था। आचार्यश्री का आदेश पाकर मैं इस कार्य में जुट गया और लगभग तीनवर्ष के निरन्तर परिश्रम से 700 पृष्ठ लिख डाले। मैंने आचार्यश्री से प्रकाशन के पूर्व पाण्डुलिपि सुनने का अनुरोध किया। आचार्यश्री ने सहर्ष अनुमति दे दी और गतवर्ष अक्टूबर माह में, मैं अपनी पाण्डुलिपि लेकर अमरकंटक पहुँचा। वहाँ आचार्यश्री ने षडावश्यकों के अतिरिक्त अन्य कार्य छोड़कर प्रतिदिन चार-चार घंटे समय देकर पन्द्रह दिन तक मेरे ग्रन्थ का पूज्य मुनिश्री अभयसागर जी के साथ श्रवण किया और अत्यन्त संतुष्ट हुए। अनेक जगह संशोधन और परिवर्धन भी कराये जिससे ग्रन्थ निर्दोष और परिपूर्ण बन गया। इसके पश्चात् फरवरी 2001 के कुण्डलपुर महोत्सव में अत्यंत व्यस्त रहते हुए भी एक सप्ताह तक दो-दो घंटे समय देकर ग्रन्थ के नये अध्याय सुनें। इस वाचना में मुनि श्री प्रमाणसागर जी और अभयसागर जी भी बैठते थे। इससे ज्ञात होता है कि आचार्यश्री का हृदय जिनागम के अवर्णवाद का निराकरण करने के लिए कितना चिन्तित है। घंटों बैठकर ग्रन्थ सुनने से जो मानसिक और शारीरिक थकावट होती थी उसकी उन्हें कोई परवाह नहीं थी। इस अवसर पर मैंने आचार्यश्री के अनिर्वचनीय वात्सल्य और मृदुता का जो आस्वादन किया वह मेरी वर्तमान मानवपर्याय की दुर्लभतम उपलब्धि है।

जैन संस्कृति की प्रभावना

इसके अतिरिक्त 'आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः' इस आचार्यधर्म का पालन करने में भी आचार्यश्री विद्यासागर जी निरन्तर तत्पर रहते हैं। उन्होंने इस विषय में अत्यन्त मनोवैज्ञानिक या व्यावहारिक उपाय का अवलम्बन किया है। उनका मत है कि जैनधर्म की प्रभावना तभी हो सकती है जब जैन धर्म के महान सिद्धान्त अहिंसा और दया का आस्वादन उन्हें भी करने को मिले जो जैन नहीं हैं। इसके लिए उन्होंने सागर (म.प्र.) में भाग्योदय तीर्थ जैसा विशाल चिकित्सालय खोलने की प्रेरणा श्रावकों को दी जिसमें जैनों के साथ जैनेतरों की भी चिकित्सा अच्छी तरह की जाती है। गोशालाएँ निर्मितकर और मांस निर्यात-प्रतिबन्ध का सत्याग्रह कर अहिंसाधर्मके पालन की प्रेरणा देना भी जैनधर्म की प्रभावना के लिए आचार्यश्री द्वारा फूँका गया सामयिक मन्त्र है।

उनके आशीर्वाद से विद्यासागर प्रबन्ध विज्ञान संस्थान भोपाल, प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान जबलपुर जैसे आधुनिक शिक्षा संस्थानों की शुरुआत भी हुई है जो जैनों और जैनेतरों को जैनत्व के संस्कारों के साथ आधुनिक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। आचार्यश्री की प्रेरणा से जैनविश्वकोश का निर्माण कार्य भी प्रगति पर है। यह देश-विदेश में रहने वाले जैन बालकों और युवकों को दिगम्बर जैनधर्म के सिद्धान्तों, जैन इतिहास, संस्कृति और कला से परिचित कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

अमरकंटक और नेमावर में विशाल मंदिरों का निर्माण जिन-शासनोन्नति का ही एक अंग है। सैकड़ों वर्षों के बाद हमारी पीढ़ियाँ जब देखेंगी तो उनकी छाती फूल उठेगी कि इक्कीसवीं सदी में भी जैनधर्म बहुत उन्नति पर था, जैसे हम आज देश के कोने-कोने में स्थित प्राचीन जैनमन्दिरों और गुफाओं को देखकर हर्ष से फूले नहीं समाते। इसी शृंखला का अंग कुण्डलपुर के बड़े बाबा का प्रस्तावित नया मंदिर भी है, जो पन्द्रह सौ वर्ष पुरानी आदिनाथ की अतिशयकारी प्रतिमा को भूकम्पजन्य क्षति से बचाने के लिए आवश्यक है।

इन सब गुणों ने आचार्यश्री के व्यक्तित्व को लोकोत्तर आकर्षण से मण्डित कर दिया हैं, किन्तु इन सब में प्रधान है निर्विकारता या वीतरागता। इसके बिना शेष गुण अनाकर्षक ही रहते। इन असाधारण गुणों से आचार्यश्री ने दिगम्बर जैन संस्कृति का आगमसम्मत शुद्ध स्वरूप प्रदर्शित किया है और उसके बहुमुखी प्रचार प्रसार में चतुर्विध संघ को प्रवर्तित कर एक नये युग की सृष्टि की है। इस युगस्रष्टा महर्षि के दैगम्बरी-दीक्षा दिवस का हम सब अभिनन्दन करते है, क्योंकि यह हमारे लिये मंगल संदेश का वाहक और प्रेरणा का स्रोत है।

रतनचन्द्र जैन

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम्।।

मरण क्या है? मूर्खता। अमूल्य क्या है? मौके पर दिया गया दान। मृत्युपर्यन्त कौन सी चीज शल्य के समान चुभती रहती है? छिपकर किया गया पाप।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधेर्दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु।।

प्रयत्न किस चीज के लिये करना चाहिए? विद्याभ्यास और अच्छी औषधि का दान करने के लिए। अवहेलना किसकी करनी चाहिए? खल, परस्त्री और परधन की।

काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री।।

रात-दिन किसका चिन्तन करना चाहिए? संसार की असारता का, न कि प्रेयसी का। प्रियतमा किसे बनाना चाहिए? करुणा, उदारता और मित्रता को।

कण्ठगतैरप्यसुभि: कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य।।

मृत्यु की नौबत आ जाने पर भी किसकी अधीनता स्वीकार नहीं करनी चाहिए? मूर्ख की, विषाद की, अभिमान की और कृतघ्न की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मान्वेषी विद्याधर की दैगम्बरी दीक्षा

● *मुनि श्री क्षमासागर*

'आत्मान्वेषी' एक कथा है, एक उपन्यास है, आचार्य श्री विद्यासागर जी की मातृश्री के मुख से आत्मकथात्मक शैली में कहलवाया गया, मुनि श्री क्षमासागर जी के भीतर बैठे रससिद्ध, कविहृदय, भावुक शब्द-शिल्पी के द्वारा। कथनशैली भावुकता से इतनी भीगी है कि लगता है कथाकार का हृदय ही पिघल कर शब्दधाराओं के रूप में बह गया है।

आचार्य श्री विद्यासागर की मंगल अवतारकथा और लोकोत्तर प्रवृत्तियों का ऐसा रससिक्त मर्मस्पर्शी चित्रण साहित्य सर्जना की अद्भुत प्रतिभा का उद्‌घाटन करता है। आचार्यश्री की मुनिदीक्षा के प्रस्तुत हृदयद्रावक दृश्य इसी के अंश हैं। पढ़ते समय पाठकों के नेत्र आनन्दाश्रुप्लावित हुए बिना नहीं रहेंगे।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज खूब सधे हुए साधक थे। उन्होंने अपना सारा जीवन जैनागम के गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन में ही बिताया। ब्रह्मचारी, विद्वान, भूरामल के नाम से विभिन्न आचार्यसंघों में वे साधुजनों को स्वाध्याय भी कराते रहे।

मैंने सुना है कि उनके पिता उन्हें बचपन में ही छोड़कर चल बसे थे। अध्ययन का साधन न होने से वे अपने बड़े भाई के साथ 'गया' चले गए। एक जैन व्यवसायी के यहाँ काम करने लगे, पर मन तो ज्ञान के लिए प्यासा था। सो एक दिन वहाँ से चलकर स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस पहुँच गए। दिन-रात ग्रंथों का अध्ययन करते-करते स्वल्पकाल में ही न्याय, व्याकरण और साहित्य के विद्वान बन गए।

तब कौन जानता था कि बनारस की सड़कों पर अपनी पढ़ाई के लिए हर शाम घंटे भर गमछे बेचकर चार पैसे कमानेवाला यह युवक संस्कृत-साहित्य का ही नहीं, वरन् समूचे जैनागम का मर्मज्ञ हो जाएगा। सचमुच, जिसका श्रम हर रात दीये में स्नेह बनकर जला हो, उसे ज्ञान और वैराग्य का प्रकाश-स्तम्भ बनने से कोई रोक भी तो नहीं सकता। प्रकाण्ड विद्वान होकर भी उन्होंने आचार्य शिवसागर महाराज के श्री-चरणों में समर्पित होकर मुनि-दीक्षा अंगीकार कर ली और एक दिन तुम्हें अपना शिष्य बनाकर कृतार्थ कर दिया। उनकी अनेकों कृतियों के बीच तुम पहली जीवन्त कृति थे।

मैंने उनकी साधुता देखी है। वे उन अर्थों में साधु थे, जिन अर्थों में कोई सचमुच साधु होता है। भेद-विज्ञानी होना साधुता की कसौटी है। वे भेद-विज्ञानी थे। भेद-विज्ञानी का अर्थ शरीर और आत्मा के भेद का मात्र जानकार होना नहीं है। सच्चा भेद-विज्ञानी वह है जो समस्त परिग्रह से मुक्त होकर आत्मानुभूति में तत्पर है। तत्त्वज्ञ तो कोई भी हो सकता है, पर वे तत्त्वद्रष्टा थे। वे शरीर और आत्मा के पृथक्करण की साधना में तत्पर निःस्पृह साधक और सच्चे भेद-विज्ञानी थे।

अपनी आत्मा को साधने में निरन्तर लगे रहने वाले वे अनोखे साधु थे। उन्होंने तनिक भी, कहीं, कुछ भी छुपाने की गुंजाइश नहीं रखी। जो जैसा था, उसे उसी रूप में प्रकट कर दिया, इसलिये वे यथाजात नग्न दिगम्बर थे। मैं बड़ा हूँ या कोई छोटा है, इस तरह की ग्रंथि उनके मन में नहीं थी। उच्चता और हीनता की ग्रंथियों से परे वे निर्ग्रन्थ थे।

ग्रन्थ के हर गूढ़ रहस्य को, हर गुत्थी को सहज ही सुलझा देना और अपने जीवन को जीवन्त-ग्रन्थ बना लेना, यह उनकी निर्ग्रन्थता की शान थी। अपने जीवन में उन्होंने जो भी लिखा वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य की रोशनाई से लिखा, तब जो भी उनके समीप आया वह निर्ग्रन्थ होने के लिये आतुर हो उठा।

मैंने देखा है कि संसार के मार्ग पर, जहाँ लोग निरन्तर विषय-सामग्री पाने दौड़ रहे हैं, वे अविचल खड़े हैं। और मोक्षमार्ग पर, जहाँ कि लोगों के पैर आगे बढ़ नहीं पाते, वे निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं। अतीत की स्मृति और अनागत की आकांक्षा जिन्हें पल भर भी भ्रमित नहीं कर पाती, ऐसे अपने आत्मस्वरूप में निरन्तर सजग और सावधान गुरु को पाकर तुम्हारा जीवन धन्य हो गया।

साँझ के समय तुम गुरु महाराज की सेवा में लगे थे। तभी अध्ययन की चर्चा चली। महाराज बोले- 'पढ़ लेना, तुम भी पढ़ लेना। अभी तक पढने वाले तुम्हारे जैसे कई ब्रह्मचारी मेरे पास और भी आए हैं, लेकिन सब पढ़कर चले गए। रुका कोई भी नहीं।' तुम्हें लगा कि कहीं महाराज जी औरों की तरह थोड़ा बहुत यूँ ही पढ़ाकर मना न कर दें।

तुम गहरे सोच में डूब गए। बड़ी मेहनत और लगन से तुम अध्ययन करने महाराज के चरणों में पहुँचे थे। सो झट से अपना माथा महाराज जी के चरणों में रख दिया और गद्‌गद कंठ से टूटी-फूटी हिन्दी में कहा कि महाराज जी, आपके चरणों में मेरे लिए जगह बनी रहे। मैं आज से जीवन-पर्यन्त वाहन-यान आदि सभी आवागमन के साधनों का त्याग करता हूँ। जितना चलूँगा अब आपकी आज्ञा से आपके पीछे-पीछे ही चलूँगा। अपनी कृपा बनाए रखिए।

महाराज जी की आँखें विस्मय और हर्ष से चमक उठीं। एक वृद्धा माँ की तरह स्नेह से भरकर उन्होंने तुम्हारे सिर पर हाथ रखा, खूब आशीर्वाद दिया और बोले- 'विद्याधर, बहुत देर से आए।' उनके वरदहस्त के स्पर्श से अभिभूत होकर और प्रेमसनी वाणी सुनकर तुम्हारी आँखे भर आईं। हृदय का द्वार खोलकर मानो ज्ञान-सूर्य तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो गया।

महाराज के चरणों में बैठकर तुमने विधिवत् अध्ययन प्रारंभ कर दिया। सतत चिन्तन-मनन और भक्ति-भाव में खोया तुम्हारा मन बाहर की दुनिया को भूलता चला गया। गहन समर्पण ने तुम्हारे भीतर अदृश्य जगत को देखने की दृष्टि पैदा कर दी। दृश्य जगत् के पीछे छिपे अदृश्य-द्रष्टा को देखना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही अब तुम्हारा ध्येय हो गया।

इस बीच जो भी आया उसने तुम्हें निरन्तर ज्ञान की आराधना में लीन पाया। खूब सबेरे उठकर अपना पिछला पाठ याद करना, नहा धोकर भगवान के अभिषेक-पूजन में लग जाना और वहाँ से आकर अत्यंत विनत भाव से नया पाठ पढ़ने के लिए महाराज के चरणों में बैठ जाना, यह रोज सुबह का क्रम था।

महाराज के आहार हो जाने के बाद जो भी श्रावक तुम्हें आहार के लिए लिवाने आता था, तुम चुपचाप सिर झुकाए उसके साथ चले जाते थे। आहार के विषय में ज्यादा मीन-मेख करना, बचपन से ही तुम्हारे स्वभाव में नहीं था। आहार के प्रति तुम्हारी यह निःस्पृहता ज्यादा दिन छिपी न रह सकी। महाराज को भी मालूम पड़ गया, सो एक दिन धीरे से पूछ लिया कि विद्याधर! साधना ठीक चल रही है? तुम सहज भाव से 'हाँ' कहकर चुप हो गए। महाराज के लिए इतना ही पर्याप्त था। वे समझ गए कि अब तुमने आत्म-विकास को अपना साध्य बना लिया है और साध्य की प्राप्ति में देह को सहायक साधन मानकर चल रहे हो। ज्ञान और साधना की यही सही शुरुआत है।

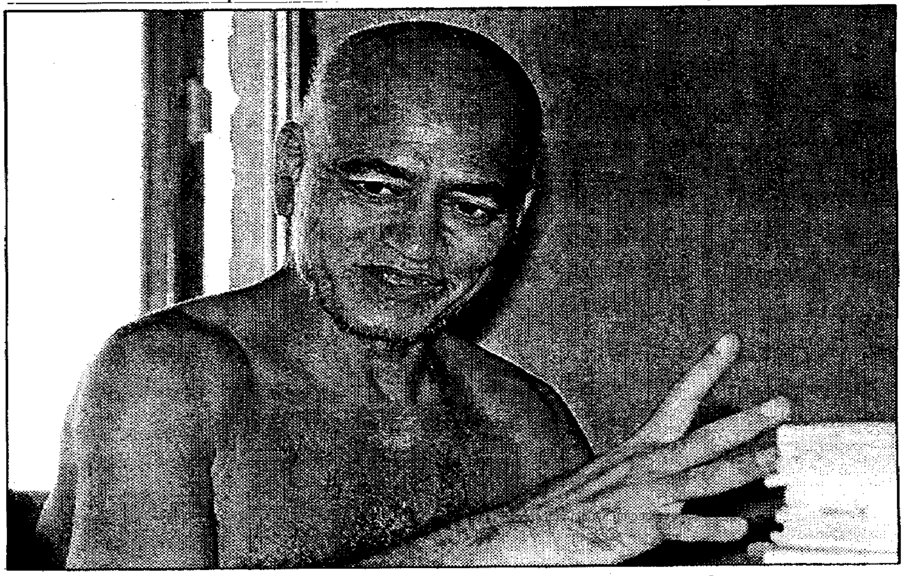

आहार के उपरान्त आचार्य महाराज, मन को थकाने वाले काम करने का निषेध करते थे। कहते थे कि विद्याधर, आहार से निवृत्त होकर मन को सजग और शान्त रखना चाहिए, ताकि सामायिक उत्साहपूर्वक हो सके। सामायिक साधना की कसौटी है। सामायिक में एकाग्रता जितनी सधेगी, साधना का आनंद भी उतना ही अधिक होगा। साधना का यही आनन्द, ज्ञान में निखार लाएगा। ज्ञान की आराधना, सामायिक की साधना के बिना अधूरी है।

इस तरह गुरु-कृपा से तुमने अक्षर-अक्षर करके हिन्दी भाषा की पूरी वर्णमाला सीखी। संस्कृत सीखी। प्राकृत की गाथाएँ दुहरायीं और निरन्तर सीखते चले गए। जब तुम बोलते-बोलते किसी कठिन शब्द के आ जाने पर चुप रह जाते थे तब महाराज कहते थे कि बोलो, विद्याधर बोलो। चुप क्यों हो गए? तुम महाराज के द्वारा कहे गए एक-एक शब्द का पुनः उच्चारण करने लगते थे।

तुमने जो भी सीखा, जितना भी सीखा पूरी लगन, निष्ठा और उत्साह से सीखा। आत्म-हित और लोक-कल्याण की भावना से सीखा। तभी तो आज तुम संस्कृत के मर्मज्ञ और प्राकृत के ज्ञाता हो। हिन्दी भी खूब अच्छी जानते हो।

कन्नड़ भाषा तो मातृभाषा के रूप में तुम्हें विरासत में मिली। तुम बहुभाषाविद् हो। मुझे लगता है कि इससे भी कहीं अधिक तुम आत्मविद् हो। कहा जाता है कि जो स्वरूप का निर्माण करती है वह कला है। एक कला वह है जो पाषाण में छिपे भगवान को प्रकट कर देती है। एक कला वह है जो शब्द में छिपे छन्द को मुक्त कर देती है। वीणा में सोए संगीत को जगाने वाली भी एक कला है, पर जगत् में सर्वश्रेष्ठ कला तो वह है जो आत्मा में सोये ब्रह्म को जगाती है। तुम ऐसे ही कलाविद् हो गए हो।

मैंने सुना है, वर्षाऋतु में लोगों ने अपनी-अपनी छतरियाँ खोल लीं और भीगने से बचने की कोशिश की, तब तुम अपने गुरु के वचनामृत से बाहर-भीतर सब ओर से भीगते चले गए। शीत ऋतु का संदेशा सुनने से पहले ही लोगों ने अपने कान ढँक लिए और मोटे लिहाफ में दुबक कर सो गए, लेकिन तुम आत्म-संदेश सुनने सारे आवरण हटाकर अपने गुरु के अत्यंत समीप आते गए।

ग्रीष्म ऋतु की तप्त ऊर्मियों से व्याकुल होकर लोगों ने रास्ते पर चलने से इनकार कर दिया, लेकिन तुम तपस्तेज में स्वयं को तपाकर अपने गुरु के बताए मोक्षमार्ग पर चलने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। उनकी चरण-शरण में बैठकर दिन-रात अन्तर्यात्रा में लग गए।

ऋतुचक्र पूरा होते न होते तुमने अपने जीवन-चक्र को अद्भुत गति दे दी। शरीर की परिधि पर घूमती चेतना की धारा को आत्म-केन्द्र की ओर प्रवहमान कर दिया। अभीक्ष्ण ज्ञान और ध्यान तुम्हारे नित्य-नियम बन गए। महाराज की दृष्टि तुम्हारे भीतर होने वाले इन सारे परिवर्तनों की साक्षी रही। वे चुपचाप सब देखते रहे। एक दिन मुस्कराकर उन्होंने कहा कि 'विद्याधर, तैयारी पूरी हो गई। तुम मोक्षमार्ग पर चलने में सक्षम हो।'

... और हवाओं की तरह यह खबर सब ओर फैल गई कि एक और दिगम्बर श्रमण शीघ्र ही अपनी पगचाप से इस धरती को धन्य करेगा।

दीक्षा होने से दो दिन पहले, वहाँ के लोगों ने तुम्हें खूब सजाया था और सारे शहर में घर-घर ले जाकर तुम्हारी आरती उतारी थी। तुम्हारी झोली मंगल-कामनाओं से भर गयी थी। लोगों के बीच हाथी पर बैठे भीड़ से घिरे होकर भी लगता था मानो तुम एकदम अकेले हो। तुम्हारी इसी भोली-भाली वीतराग चितवन ने सबका मन मोह लिया था।

दीक्षा के दिन अपार जनसमूह के बीच, तुमने अपने कोमल हाथों से देखते-देखते केशलुंचन कर लिये और हवा में लहराता एक उत्तरीय कंधे पर डाले, खड़े होकर अपनी ओजस्वी वाणी से सारे जनसमूह को भाव-विभोर और चकित कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीक्षा से पहले जो एक प्रश्न लोगों के मन में सहज ही उठा था कि इतने सुकुमार बाईस वर्षीय युवा को सीधे मुनि दीक्षा देना कहाँ तक उचित है, इसका समाधान तुम्हारी सम्यक्-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा और अपार चारित्रिक दृढ़ता को देखकर आपोआप मिल गया। उन क्षणों में सभी ने ऐसा अनुभव किया कि तुम जो भी करोगे वह इस युग के लिये अद्‌भुत और परम उपकारी होगा।

महाराज के चरणों में तुमने विनम्र निवेदन किया- 'मैं सकल चराचर जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी मुझे क्षमा करें। मैं अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के द्वारा प्ररूपित अनादिकालीन श्रमण-धर्म की शरण को स्वीकार करता हूँ। मैं समस्त पूर्वाचार्यों की शरण को स्वीकार करता हूँ। मैं दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागर जी, आचार्य श्री वीरसागर जी, आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज की परम्परा में अपने साक्षात् गुरु श्री ज्ञानसागर जी महाराज की चरण-शरण को स्वीकार करता हूँ। पूज्य महाराज मुझे जैनेश्वरी-दीक्षा देकर अनुगृहीत करें।'

दीक्षाविधि प्रारंभ हुई। तुमने एक-एक करके सभी महान प्रतिज्ञाएँ दुहराईं, कि मैं पाँच पापों को त्यागकर पाँच महाव्रतों को स्वीकार करता हूँ। मैं पाँच असमीचीन प्रवृत्तियों को छोड़कर पाँच समितियों को ग्रहण करता हूँ। मैं पाँच इन्द्रिय-विषयों में आसक्ति छोड़कर पाँच इन्द्रिय-निरोधों को अंगीकार करता हूँ। मैं आगमोक्त षट्-आवश्यक क्रियाओं, सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग को स्वीकार करता हूँ। मैं समस्त प्रकार के स्नानों का परित्याग कर अस्नान व्रत को अंगीकार करता हूँ। मैं समस्त वस्त्राभूषणों का त्यागकर यथाजातरूप, अचेलकव्रत को स्वीकार करता हूँ। मैं रागयुक्त शय्यादि का परित्याग कर भूमि-शयन व्रत को अंगीकार करता हूँ। मैं दन्त-परिष्कार से मुक्त होकर आत्म-परिष्कार के लिए अदन्तधावन व्रत को स्वीकार करता हूँ। मै संसार में प्रचलित सभी भोजन प्रणालियों से विमुख होकर एक अतिथि की तरह अपने पाणिपात्र में खड़े होकर भोजन ग्रहण करने रूप स्थिति-भोजन व्रत को अंगीकार करता हूँ। मैं कई बार भोजन और रात्रिभोजन से विमुख होकर दिन में एक बार, प्रासुक, निर्दोष भोजन, ग्रहण करने रूप एक-भक्त-व्रत को स्वीकार करता हूँ। मैं अब स्वाश्रित होने के लिए अपने हाथों केशलुंचन के लिए संकल्पित होता हुआ लोचव्रत रूप मूलगुण को अंगीकार करता हूँ।'

दीक्षा के उन पावन क्षणों में हजारों आँखें तुम्हारी ओर अपलक देख रही थीं। सब प्रतीक्षारत थे। इतने में ही अचानक हवाएँ थम गईं और बादलों का एक नन्हा-सा टुकड़ा उस तपती दुपहरी में जाने कहाँ से आकर वहाँ बरस गया। सब ओर जय-जयकार होने लगी। मानो उत्सव की खुशियों में गलकर श्रद्धा सजल हो गई। तुम्हारे जीवन में वीतरागता के बादल उमड़े और तुम आत्मानुभूति में भीगते चले गए।

क्षणभर में तुम्हारी देह अनावरित हो गई। हजारों आँखों में प्रतिबिम्बित हुआ आगामी श्रमण-धारा को दिशाबोध देनेवाला एक युवा श्रमण 'मुनि विद्यासागर'।

अपने इस नव दीक्षित शिष्य को गुरु ने उद्‌बोधन दिया- 'अब तुम्हें आत्म-कल्याण के लिए निरन्तर आगे बढ़ते रहना है। जो जीवन बीत चुका उसके बारे में क्षण मात्र भी विचार नहीं करना है। मुनि का लक्ष्य है ऊँचाइयाँ छूने का, मोक्ष प्राप्त करने का। गृहस्थ ने अगर अपने से बड़ों को देखकर ईर्ष्या की और नीचे वालों से घृणा की, तो वह आत्म-कल्याण नहीं कर सकेगा और यदि साधु ने नीचे की ओर देखकर अपने को ऊँचा मानकर संतोष कर लिया या ऊँचाइयों का ध्यान भुला दिया तो उसका भी कल्याण नहीं।'

उपदेश प्रेरणादायी था। तुमने ध्यान से सुना और मन ही मन संकल्प कर लिया कि मैं 'साधु के योग्य निर्दोष आचरण करूँगा और ऊँचाइयों को छूने का प्रयास करूँगा।'

उस दिन अपने गुरु के साथ जब तुमने मोक्षमार्ग पर पहला कदम बढ़ाया तब लगा मानो अचला कहलाने वाली धरा ने स्वयं चलकर तुम्हारे पग थाम लिए और कहा - 'हे श्रमण! यह रहे तुम्हारी विजय-यात्रा के प्रथम चरण, जाओ, और आत्म-आकाश में अनन्त ऊँचाइयों पर अबाध विचरण करो।'

●

समर्पण

मुनि श्री क्षमासागर

जो ज्योति-सा
मेरे हृदय में
रोशनी भरता रहा
वह देवता

जो साँस बन
इस देह में
आता रहा
जाता रहा
वह देवता

जो दूर रह कर भी
सदा से
साथ मेरे है
यही अहसास
देता रहा
वह देवता

मैं जागता हूँ
या नहीं
यह देखने
द्वार पर मेरे
दस्तक सदा
देता रहा
वह देवता

जो गति
मेरी नियति था
ठीक मुझ-सा ही
मुझे करता रहा
वह देवता

समर्पण

दीप उनका
रोशनी उनकी
मैं जल रहा हूँ

रास्ते उनके
सहारा भी उन्हीं का
मैं चल रहा हूँ

प्राण उनके
हर साँस उनकी
मैं जी रहा हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याधर से विद्यासागर : युग परिवर्तन

● *मुनि श्री समतासागर*

प्यासे को जितनी पानी की जरूरत थी, उतनी ही जरूरत पानी को प्यासे की थी। प्यासा पानी की तलाश में था तो पानी भी प्यासे की प्रतीक्षा में था। आज की तिथि में प्यासे को पानी और पानी को प्यासा मिला था। 80 वर्ष के वयोवृद्ध तपस्वी साधक ज्ञानसागर ने 21 वर्ष के युवा ब्रह्मचारी विद्याधर के लिये मुनि दीक्षा प्रदान की।

कहने को तो आज की इस अषाढ़ सुदी पंचमी (सन् 1968) की तिथि में ब्र. विद्याधर की मुनि दीक्षा हुई, पर सिर्फ यह दीक्षा ही नहीं थी, था युग को परिवर्तित करने का स्वर्णिम अवसर। जीर्ण-जर्जरित श्रमण परंपरा को जीवंत, जयवंत करने का इतिहास इसी अवसर की लेखनी से रचा गया। अध्यात्मिक नायक आचार्य कुंद-कुंद की वह पावन गाथा ब्र. विद्याधर के मानस पटल पर तैर रही थी कि 'पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुःख परिमोक्खं' यदि आप दुःख से छुटकारा चाहते हों तो श्रामण्य को अंगीकार करो। तन-मन को दिगंबर कर 28 मूल गुणों में अपनी जीवनचर्या को निरुद्ध करना ही श्रामण्य (समता) है। तीर्थंकर महावीर और गौतम गणधर की परंपरा में अनेकानेक आचार्यगण हुए हैं। इसी सदी में विलुप्त होती निर्ग्रंथ श्रमण परंपरा का प्रवाह आचार्य श्री शांतिसागर ने किया। राजमार्ग खोला, जिनके शिष्य आचार्य वीरसागर, आचार्य शिव सागर, तत्पश्चात् आचार्यश्री ज्ञानसागर और इन्हीं ज्ञानसागर ऋषिराज के प्रथम शिष्य आचार्य श्री विद्यासागर आज सिर्फ जैनों के ही नहीं, बल्कि जन-जन के संत हैं। उनका परिचय खुद सूरज का प्रकाश है, जिसे देखने किसी दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं पड़ती।

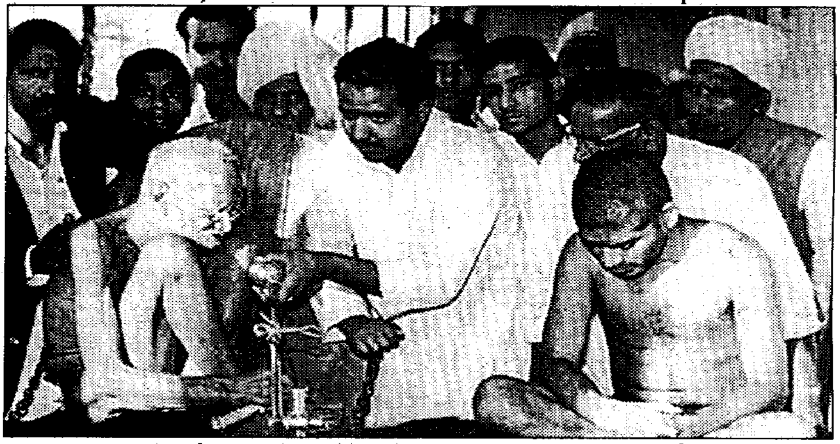

स्वयं अपना परिचय बनाने की इस लम्बी यात्रा की कहानी भी बड़ी संघर्षपूर्ण रही है। अजमेर नगर में जब पारखी ज्ञानसागर ने यह घोषणा कर दी कि विद्याधर की दीक्षा होगी, तब समाचार सुनकर सारे नगर में हलचल-सी पैदा हो गई। उस समय की परिस्थितियों में किसी युवा व्यक्ति का एकदम मुनि बनना समाज का प्रबुद्ध वर्ग पचा नहीं पा रहा था। बात फैली और मुनि दीक्षा न हो, इसकी अगुवाई करते हुए समाज के प्रमुख सरसेठ भागचंद सोनी ज्ञानसागर महाराज के पास पहुँचे और कहा कि महाराज आप ब्रह्मचारी को सीधे मुनि दीक्षा न दें, क्योंकि इनकी उम्र अभी कम है, मुनि बनना तो ढलती उम्र का काम है। ज्ञानसागर ने बात सुनी और पूरे विश्वास के साथ कहा- दीक्षा तो होगी, क्योंकि मुहूर्त निकल गया है अब यदि कम उम्र वाले को दीक्षा नहीं दें तो आपकी उम्र ज्यादा है, आप तैयार हो जायें। सोनी जी सुनकर अवाक् रह गये। तब ज्ञानसागर महाराज ने सभी की शंकाओं का समाधान करते हुए कहा कि मैं इन्हें ऐसे ही दीक्षा नहीं दे रहा हूँ। मैंने ग्यारह माह की इनकी साधना को परख लिया है। ये जिन शासन की निर्मल श्रमण परंपरा के सही प्रभावनापथ-संवाहक रहेंगे।

गुरुवर आचार्य ज्ञानसागर ने अपनी समाधिबेला में अपने होनहार शिष्य को आचार्य पद देकर इतना ही कहा था मैं तो जा रहा हूं- 'बस संघ को गुरुकुल बनाना' और जब ये आँखें गुरुवर के विस्तार को देखती हैं, तो सहज ही कृतज्ञता से झुक जाती हैं। उनका सारा संघ आज तपोवन के गुरुकुलों की याद दिलाता है, वह आज सिर्फ गुरुकुल के जनक ही नहीं हैं, हम सबके कुलगुरु भी हैं। आज उनका निर्मल चरित्र करुणामय वाणी और 'सब जन हिताय सब जन सुखाय', चर्चा उन्हें उनके यश को सात समुंदर पार ले जा रही है।

सुना गया है कि कृष्ण की वंशी की तान सुनकर, गोपियाँ उनके पीछे लग जाती थीं, पर वह सतयुग था और राग की वंशी थी, पर यह तो कलयुग है और है विराग की वंशी। जिसे सुनकर लाखों जन पीछे लगे हुए हैं। उनका यही व्यक्तित्व उनको असाधारणता दिला रहा है, अपने लक्ष्य की ओर निरंतर गतिमान करना और धैर्य से काम लेना, यह आपकी विशेषता है। आप कथनी में कम किन्तु करनी में, आचरण में विश्वास रखते हैं।

परम तपस्वी साधक, चिंतन व चेतना के धनी इस धरती पर वरदान हैं, इन्हें देखकर लगता है कि जैसे कभी महावीर को शिष्य इंद्रभूति, गौतम स्वामी और आचार्य धरसेन को शिष्य पुष्पदंत-भूतबलि मिले थे, ठीक वैसे ही गुरु आचार्य ज्ञानसागर को ब्र. विद्याधर मिले, जो निर्ग्रंथ विद्यासागर बनकर आज समूची जैन समाज के शिरोमणि आचार्य बने हुए हैं। उनके आचार्यत्व की मंगलयात्रा में जो कुछ घट रहा है वह स्वयं अतिशय चमत्कार बना हुआ है। आज अपने गुरुवर के 32वें दीक्षा दिवस की पावन बेला में हम अकिंचन अन्तेवासी कामना करते हैं कि इसी तरह गुरुवर अपने विशाल संघ के साथ धर्म प्रभावना करते रहें। उनका तपोमय जीवन यशस्वी और चिरंजीवी रहे।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण परम्परा के ज्योतिर्मय महाश्रमण आचार्य श्री विद्यासागर

● *मुनि श्री अजितसागर*

जीवन का रहस्य क्या है, इसमें रहस्यकी बात है, जिसका कोई कोई उत्तर ही नहीं, उसे तो बस खोजते चले जाओ जिसे खोजते-खोजते तुम स्वयं में खो जाओगे और खोज जारी रहेगी। जो इस खोज में डूब गया वही स्वयं के परमात्मा को पा गया। ऐसा परमात्मा जिसका कोई अन्त न हो। अन्त-अनंत की गहराई को लिये ऐसा परमात्म होता है। इसी परमात्मा की गहराई में डुबकी लगाने वाले और वर्तमान में श्रमण परम्परा को ज्योतिर्मय बनाने एवं परमागम के रहस्य को समझने और समझाने वाले एवं एक नाव की तरह कार्य करने वाले- जैसे नाव कभी भी नदी के उस पार अकेली नहीं जाती अपनी पीठ पर बैठा कर अनेकों व्यक्तियों को उस पार पहुँचाती है, वैसे अनेकों व्यक्तियों को ससार-सागर से निकाल कर मोक्ष का मार्ग प्रदान करने वाले अपने अहर्निश साधना के माध्यम से स्वकल्याण के साथ परकल्याण की भावना रखने वाले। जो स्वयं चलते हुए भव्य जीवों को चलाने वाले ऐसे आचार्य परमेष्ठी आचार्य प्रवर संत शिरोमणि श्री विद्यासागर जी महाराज जो एक प्रकाशमान दीप की तरह सबको प्रकाश देने महान योगी ज्योतिर्मय महाश्रमण का मुनि दीक्षा दिवस हम सबके लिये पावन पर्व के समान है।

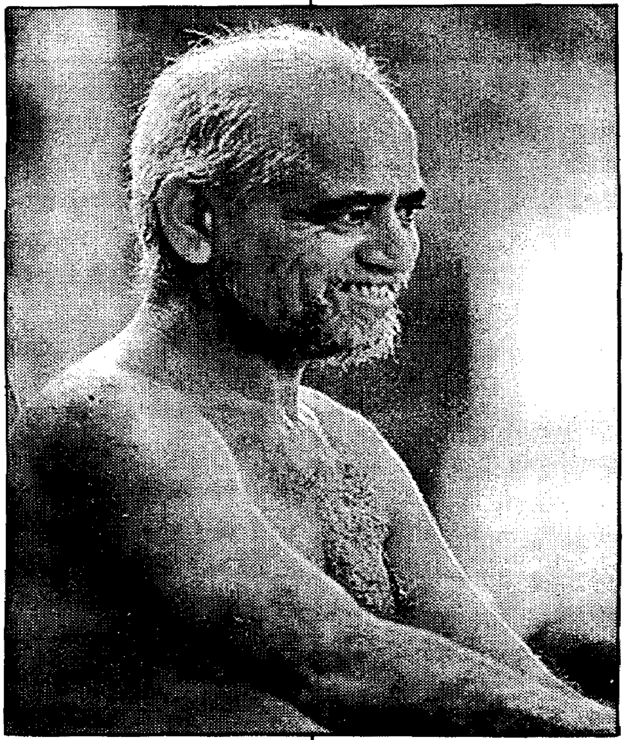

जैनाचार्यों ने जिनागम में आचार्य परमेष्ठी का लक्षण कहा है- जो मोक्षमार्ग पर स्वयं चलते हुए दूसरे भव्य जीवों को चलाता है। इसलिये पूज्यपाद स्वामी ने आचार्य भक्ति में लिखा है-

'सिस्सामुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे'

जो शिष्य के अनुग्रह करने में कुशल होता है उस धर्माचार्य की सदा वन्दना करता हूँ।

भारतीय संस्कृति में जिनशासन की गौरव गाथा गानेवाले उसके रहस्यों को बताने महान-महान आचार्य हुए जिन्होंने संयम का स्वरूप एवं यथाजात-निर्ग्रन्थ स्वरूप को धारण करके भटके-अटके अज्ञानी भव्य जीवों के लिये सही दिशाबोध देकर श्रमण परम्परा की अखण्ड धारा को भारत भूमि पर प्रवाहित किया। उसी परम्परा को बीसवीं शताब्दी में महान आचार्य श्री शातिसागर जी आगे बढ़ाया और क्रमशः आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने उसी परम्परा को आगे बढ़ाते रहे। आज उन्हीं के प्रथम शिष्य जिन्होंने अनुपम इतिहास रचा है, जिन्होंने इस 20वीं एवं 21वीं शताब्दी में इतने सारे बालयति साधकों को मोक्षमार्ग पर लगाया है, जो जिनशासन की शान हैं और वर्तमान युग में मूलाचार की जीवित पहचान हैं, जिनकी आशीषभरी छाँव में आज हजारों साधक मोक्ष मार्ग पर अग्रसर है, उन महाश्रमण आचार्य श्री का मुनिदीक्षा दिवस है।

जो फरिश्ते कर सकते हैं कर सकता इंसान भी।
जो फरिश्ते से न हो वह काम है इंसान का।

वह काम जो देव भी चाहते हुए नहीं कर सकता है वह काम इंसान कर सकता है। इस मनुष्य पर्याय की दुर्लभता वह देवेन्द्र ही समझता है। वह भी तरसता है कि कुछ क्षण के लिये हमें यह मनुष्य पर्याय मिल जाये। इस मनुष्य पर्याय की दुर्लभता को एक युवा हृदय ने आज से 33 वर्ष पूर्व 21 वर्षीय ब्रह्मचारी विद्याधर जी अष्टगे ने धन्य किया था। जिसे घर के लोग प्यार से पीलू, गिन्नी, मरी आदि नाम से बचपन में पुकारा करते थे। कर्नाटक के दक्षिण भारत में बेलगाँव जिले के अन्तर्गत सदलगा ग्राम में आश्विनी शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) 10 अक्टूबर 1946 के दिन श्रेष्ठीवर श्री मल्लप्पाजी अष्टगे मातु श्रीमती जी अष्टगे की कुक्षी से आपका जन्म हुआ था। आप अपने गृह की द्वितीय संतान होकर भी अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी थे। आपका बाल्यकाल खेलकूद और अध्ययन के साथ सन्तदर्शन की भावना से ओतप्रोत रहता था। बालक विद्याधर प्रत्येक कार्य में निपुण था। कृषि कार्य में कुशलता छोटी सी उम्र में प्राप्त हो गई थी। खेल में शतरंज और केरम में आप मास्टर माने जाते थे। छोटी-सी उम्र में बड़ों-बड़ों को पराजित कर देते थे। शिक्षा के क्षेत्र में हमेशा आगे रहने वाले और प्रथम स्थान प्राप्त करना तो सहज काम था।

बाल्यकाल व्यतीत होते ही जवानी की ओर कदम बढ़े। उस भरी जवानी में जीवन के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा युवा मन में समाई। एक दिन शेडवाल ग्राम में आचार्य श्री शान्तिसागर जी का ससंघ आगमन हुआ। पहुंच गये उनके वचनामृत को सुनने के लिये। मिल गया वह सूत्र जीवन के रहस्य दर्शन कराने वाला, उपजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदय में वैराग्य, छूटने लगा संसार का राग और चिन्तन चलने लगा जिन्दगी का सही राज पाने के लिये। जीवन का रहस्य कैसे पाया जाता है? किसी ने कहा है-

जिन्दगी का राज वह इंसान पा सकता है।
जो रंज में भी खुशियों के गीत गाता है।

जीवन के रहस्य की खोज के लिए 20 वर्ष की अल्प आयु में बढ़ चले कदम संयम पक्ष की ओर। आचार्य श्री देशभूषण जी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर कछ समय उनके पास रहे बाद में राजस्थान की ओर आ गये। वयोवृद्ध तपोनिधि श्री ज्ञानसागर जी महाराज जी के पास रहकर जैनदर्शन, न्याय, अध्यात्म, ग्रन्थों का अध्ययन किया। इतनी वृद्धावस्था में श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने योग्य पात्र को पाकर अपना सारा ज्ञान का भंडार दे दिया। एक दिन वह भी आ गया जो ज्ञान दान के साथ संयम का दान भी ज्ञानसागर जी महाराज ने ब्रह्मचर्य श्री विद्याधर जी को दिया। वह पावन दिन था आषाढ़ शुक्ला पंचमी वि.सं. 2025 दिनांक 30 जून 1968। इस दिन राजस्थान अजमेर में निर्ग्रन्थ यथाजात रूप मुनि दीक्षा के संस्कार भरी सभा के सामने आचार्यश्री ज्ञानसागर जी ने किये। जैसे ही ब्रह्मचारी श्री विद्याधर जी ने वस्त्रों का त्याग कर निर्ग्रन्थ स्वरूप धारण किया, देवों ने भी इस महोत्सव को मनाया और भीषण गरमी के समय वर्षा होने लगी। श्री ज्ञानसागर जी ने ब्रह्मचारी श्री विद्याधर जी को मुनि विद्यासागर नामकरण करके सुशोभित किया। उनके द्वारा प्रथम दीक्षित मुनि श्री विद्यासागर जी संयम साधना के साथ स्वाध्याय ध्यान करने लगे। इसके बाद आचार्य श्री ज्ञानसागर जी अपने प्रथम योग्य शिष्य को अपना आचार्य पद भी मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया वि.सं. 2029 दिनांक 22 नवम्बर 1972 को नसीराबाद जिला- अजमेर (राज.) में देकर आचार्य विद्यासागर बना दिया। अपने ही शिष्य को निर्यापकाचार्य बनाकर समाधिमरण किया। ऐसे महान योगी साधक का यह 34वां मुनि दीक्षा दिवस हम सबके लिए वैराग्य का मार्ग दिखाने वाला है और संयम की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाला है। इस पावन दिवस पर हम सब की मंगलमयी कामना है कि जिनशासन के महानतम आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज शतायु हों और हमें कल्याण का मार्ग बताते रहें, हम उनके अनुसार चलकर अपना कल्याण करें।

●

आदर्शकथा

आदर्श शासक

● यशपाल जैन

नौशेरवां ईरान का बड़ा न्यायप्रिय बादशाह था। छोटी-से-छोटी चीजों में भी न्याय की तुला उसके हाथों में रहती थी। सबसे अधिक ध्यान वह अपने आचरण का रखता था।

एक बार बादशाह जंगल की सैर करने गया। उसके साथ कुछ नौकर-चाकर भी थे। घूमते-घूमते वे शहर से काफी दूर निकल गये। बहुत देर हो गई। बादशाह को भूख लग आई। उसने नौकरों से वहीं भोजन की व्यवस्था करने को कहा। खाना तैयार किया गया। जब बादशाह खाने बैठा तो उसे साग-सब्जियों में नमक कम लगा। उसने नौकरों से कहा, 'जाओ, गाँव से नमक ले आओ।'

दो कदम पर गाँव था। एक नौकर जाने को हुआ तो बादशाह ने कहा, 'देखो, जितना नमक लाओ, उसके पैसे दे आना।'

नौकर ने यह सुना तो उसने बादशाह की ओर देखा। बोला, 'सरकार, नमक जैसी मामूली चीज के लिए कौन पैसा लेगा? आप उसकी क्यों फिक्र करते हैं?'

बादशाह ने कहा, 'नहीं, उसे पैसे देकर आना।'

नौकर बड़े आदर से बोला, 'हुजूर, जो नमक देगा, उसके लिए कोई फर्क नहीं पड़ेगा, उल्टे उसे खुशी होगी कि उसको अपने बादशाह की सेवा करने का अवसर मिला।'

बादशाह गम्भीर हो आया। तेज आवाज में उसने कहा, 'यह मत भूलो की छोटी चीजों से ही बड़ी चीजें बनती हैं। छोटी बुराई बड़ी बुराई के लिए रास्ता खोलती है। अगर मैं किसी पेड़ से एक फल तोड़ता हूँ तो मेरे सिपाही उस पेड़ पर एक भी फल नहीं छोड़ेंगे। मुमकिन है, ईंधन के लिए पेड़ को ही काटकर ले जायँ। ठीक है कि एक फल की कोई कीमत नहीं है, लेकिन बादशाह की जरा-सी बात से कितना बड़ा अन्याय हो सकता है! जो हुकूमत की गद्दी पर बैठता है, उसे हर घड़ी चौकन्ना और चौकस रहना चाहिए।'

प्रश्न और उत्तर

● यशपाल जैन

एक दिन एक विद्वान् संत कबीर के पास आये। बोले, 'मुझे यह बताइये कि मैं गृहस्थ बनूँ या साधु?'

कबीर ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया और अपनी स्त्री से कहा, 'दीपक जलाकर ले आओ।' स्त्री गई और दीपक जलाकर ले आई।

इसके बाद कबीर उस विद्वान् को लेकर एक वृद्ध साधु के पास गए। उनके घर पर पहुँचकर आवाज दी, 'मेहरबानी करके जरा नीचे आ जाइये। दर्शन करना है।' बेचारे साधु ऊपर से उतरकर नीचे आये और दर्शन देकर चले गये। ऊपर पहुँचे ही थे कि कबीर ने फिर पुकारा, 'एक काम है। नीचे आ जाइये।' बिना हिचक के वह फिर नीचे आ गए। बोले, 'बताओ,क्या काम है?'

कबीर ने कहा, 'एक सवाल पूछना था, पर भूल गया।'

साधु मुस्कराकर बोले, 'कोई बात नहीं है। याद कर लो।'

इतना कहकर साधु ऊपर चले गए। कबीर ने फिर पुकारा वह फिर आ गए। इस प्रकार कबीर ने कई बार उन्हें नीचे बुलाया और वह आये। पर उनके माथे पर शिकन तक नहीं आई।

तब कबीर ने विद्वान् को संबोधित करके कहा, 'देखो, यदि तुम इन साधु जैसी क्षमा रख सको तो साधु बन जाओ और अगर मेरी जैसी विनीत स्त्री मिल जाए, जो दिन के उजाले में दीपक जलाने की कहने पर बिना तर्क किये कि दीपक की क्या जरूरत है, जलाकर ले आए, तो गृहस्थ जीवन अच्छा है।'

अपने प्रश्न का समुचित उत्तर पाकर विद्वान् चले गए।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम, तप, अपरिग्रह का मनोविज्ञान

● प्रो. रतनचन्द्र जैन

मन्दकषाय-परिणाम को विशुद्धता कहते हैं। इससे अशुभकर्मों का संवर और निर्जरा तथा शुभकर्मों का आस्रव-बन्ध होता है। विशुद्धता के विकास में संयम, तप, अपरिग्रह, भक्ति, स्वाध्याय और सत्संग मनोवैज्ञानिक भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुत आलेख में प्रथम तीन साधनों की मनोवैज्ञानिक भूमिका का उद्‌घाटन किया गया है।

कर्मों का उदय और उदीरणा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के निमित्त से होती है। जैसे स्वर्णादि द्रव्य या सांसारिक सुख की वस्तुएँ दिखने पर मोही जीव के लोभ का उदय हो जाता है। स्त्री के सान्निध्य से पुरुष के मन में, पुरुष के सम्पर्क से स्त्री के मन में कामवासना (वेदकषाय) की उत्पत्ति होती है। शत्रु का सामना होने पर क्रोध उदित हो जाता है। सुन्दर दृश्य, मधुर संगीत या मादक सुगन्ध की अनुभूति सातावेदनीय के उदय का कारण बन जाती है। ये द्रव्य के निमित्त से क्रोधादि कर्मों के उदय के उदाहरण हैं।

कुछ कर्मप्रकृतियों का उदय नरक-स्वर्ग आदि विशिष्ट क्षेत्रों में ही होता है। हिमालय आदि अत्यंत शीतल क्षेत्र में या किसी अत्यंत उष्ण प्रदेश में जाने से शीत और उष्णता की पीड़ा अनुभव कराने वाले असातावेदनीय का उदय होता है। कभी-कभी निर्जन वन में भय की उत्पत्ति होती है। यह क्षेत्रनिमित्तक कर्मोदय है।

उदयकाल आने पर जो कर्मोदय होता है वह कालनिमित्तक है। शीत, ग्रीष्म आदि देहप्रतिकूल ॠतुओं (काल) के निमित्त से भी असातावेदनीय का उदय होता है। वृद्धावस्था भी असातावेदनीय के उदय का निमित्त बन जाती है। यह कालनिमित्तक कर्मोदय है।

मनुष्यादि भवों (पर्यायों) के निमित्त से मनुष्यगति, मनुष्यायु आदि का उदय होता है। देव और नारक भव के निमित्त से वैक्रियिक शरीर का उदय होता है।

जीव के अपने भावों के निमित्त से भी कर्मों का उदय होता है। जैसे किसी वस्तु के प्रति लोभ का उदय हो और उसकी प्राप्ति सरल मार्ग से होती हुई दिखाई न दे, तो माया (छलकपट-भाव) का उदय हो जाता है। माया सफल न होने पर हिंसाभाव (क्रोध) जन्म लेता है। मिथ्यात्व के निमित्त से संसार के पदार्थों में रागद्वेष की उत्पत्ति होती है। मानकषाय के निमित्त से अपना सम्मान करनेवालों के प्रति प्रीति (रति) एवं उपेक्षा करने वालों के प्रति द्वेष (अरति) का उदय होता है।

इस प्रकार कर्मों का विपाक (फल देने की अवस्था को प्राप्त होना), द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव का निमित्त होने पर ही होता है, उसके बिना नहीं। किन्तु काल की अपेक्षा अन्य निमित्त प्रायः बलवान होते हैं, क्योंकि भले ही किसी कर्म का उदयकाल हो, यदि किसी अन्य कर्म के उदययोग्य अन्य निमित्त उपस्थिति हो गया है, तो उसका उदय हो जायेगा और जिसका उदयकाल है वह स्वमुख से उदित न होकर उसी अन्य कर्म के मुख से (उसी के रूप में परिणत होकर) उदित होगा। (सर्वार्थसिद्धि 8/21) जैसे साता और असाता दोनों का अबाधाकाल समाप्त हो जाने पर एक साथ दोनों ही प्रकृतियों के निषेक उदययोग्य होते हैं। किन्तु इनमें से जिसके उदय के अनुकूल अन्य निमित्त होंगे उसी का स्वमुख से उदय होगा, दूसरी का स्तिबुक-संक्रमण के द्वारा परमुख से उदय होगा। (पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, भाग 1, पृ. 446)

जिस समय क्रोध का उदय है उस समय उदय में आने वाले मान, माया, लोभ (उस समय से) एक समय पूर्व ही स्तिबुकसंक्रमण द्वारा क्रोधरूप परिणत हो जाते हैं। अतः क्रोधोदय के समय उदय को प्राप्त मान, माया, लोभरूप कर्म स्वमुख से उदित न होकर क्रोधरूप में परमुख से उदित होते हैं। (पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, भाग-1, पृष्ठ 455)

पंडित फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री लिखते हैं - 'अध्रुवोदयरूप कर्मप्रकृतियों में हास्य और रति का उत्कृष्ट उदय-उदीरणा काल सामान्यतः छह माह है। इसके बाद इनकी उदय-उदीरणा न होकर अरति और शोक की उदय-उदीरणा होने लगती है। किन्तु छह माह के भीतर यदि हास्य और रति के विरुद्ध निमित्त मिलता है तो बीच में ही इनकी उदय-उदीरणा बदल जाती है। (सर्वार्थसिद्धि 9/36/ विशेषार्थ)

स्वर्ग में प्रायः साता की ही सामग्री उपस्थित रहती है और नरक में असाता की ही। अतः स्वर्ग में सातावेदनीय का ही उदय बना रहता है, असाता का उदयकाल आने पर साता के रूप में परिणमित होकर उदित होता है। इसी प्रकार नरक में असाता का ही उदय रहता है और सातावेदनीय असाता के रूप में परिवर्तित होकर फल देता है। (जैनदर्शन/महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य/पृ. 102)

इससे स्पष्ट होता है कि उदयकाल रूप निमित्त की अपेक्षा द्रव्य, क्षेत्र, भव, भाव तथा शिशिर-वसन्त, रात्रि, वार्धक्य आदि काल-रूप निमित्त अधिक बलवान् होते हैं।

निमित्त-परिवर्तन से कर्मोदय में परिवर्तन

चूँकि कर्मों का उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के निमित्त से होता है, अतः निमित्तों में परिवर्तन कर कर्मोदय में परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, लोभ उत्पन्न करने वाली सामग्री का सान्निध्य टालकर और निर्लोभ की प्रेरणा देने वाले निमित्तों का आश्रय लेकर लोभ के उदय को रोका जा सकता है। कोई हमारा अपमान करता है और उसके निमित्त से क्रोध उत्पन्न हो सकता है तो हम क्षमाभाव द्वारा अपमानबोध को निष्प्रभावी कर क्रोध के उदय को रोक सकते हैं। इस प्रकार क्षमादिभाव, संयम-तप-अपरिग्रह, भक्ति, स्वाध्याय आदि वे निमित्त हैं जो क्रोधादि के उदय के निमित्तों को अशक्त कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप क्रोधादि का उदय नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो पाता, अर्थात् उनका तीव्रोदय असम्भव हो जाता है। इससे संक्लेश या कालुष्य की उत्पत्ति नहीं होती और विशुद्धता का विकास होता है। उस विशुद्धता से कोई-कोई अशुभ कर्म शुभ में बदल जाते हैं, किन्हीं अशुभ कर्मों की स्थिति और अनुभाग का ह्रास हो जाता है तथा शुभकर्मों की स्थिति घट जाती है और अनुभाग बढ़ जाता है। इस रीति से विशुद्धता का निरन्तर विकास होता रहता है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जा रहा है।

संयम, तप और अपरिग्रह के द्वारा शरीर को परद्रव्यों की अधीनता से यथासम्भव मुक्त कर ऐसा स्वस्थ और संयत बनाया जाता है कि वह परद्रव्येच्छारूप तीव्रकषाय के उदय का निमित्त नहीं बन पाता, न ही परद्रव्य के अभाव में असातावेदनीय के उदय का हेतु बनने में समर्थ होता है।

संयम का मनोविज्ञान

इंद्रियों में स्वभावतः विषयसेवन की रुचि होती है (दग्धेन्द्रियाणां रुचिवशेन.... रुचितारुचितेषु रागद्वेषावुपश्लिष्य नितरां क्षोभमुपैति। प्रवचनसार, तत्त्वदीपिकावृत्ति 1/83) और अनियंत्रित विषयभोग द्वारा उनमें विषयसेवन का व्यसन भी उत्पन्न हो जाता है। इससे उन्हें जिस समय, जिस वस्तु के भोग की आदत पड़ जाती है, उस समय उस वस्तु के भोग के लिये उनमें अत्यंत पीड़ाकारक उद्दीपन होता है, अर्थात् असातावेदनीय का उदय होता है। उससे संक्लेशपरिणाम की उत्पत्ति होती है। उसके निमित्त से विषयों को भोगने की आकांक्षा के रूप में तीव्र राग का उदय होता है। इस तथ्य पर आचार्य शुभचन्द्र ने निम्नलिखित शब्दों में प्रकाश डाला है-

इदमक्षकुलं धत्ते मदोद्रेकं यथा यथा।
कषायदहनः पुंसां विसर्पति तथा तथा।।
(ज्ञानार्णव 20/3)

- इंद्रियों का समूह जैसे-जैसे मद की उत्कटता धारण करता है, वैसे-वैसे मनुष्य में कषायरूप अग्नि भड़कती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है-

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। (2/60)

- हे कुन्तिपुत्र! मनुष्य कितना ही ज्ञानी हो, यदि उसकी इन्द्रियाँ असंयत हैं तो वे मन को बलात् विषयों की ओर खींच ले जाती हैं।

उद्दीप्त इन्द्रियों के निमित्त से असातावेदनीयजनित संक्लेश-परिणाम द्वारा विषयेच्छा उत्पन्न होने पर जीव विषय-प्राप्ति का प्रयत्न करता है। उसमें कोई बाधक बनता है, तो उसके निमित्त से क्रोध और मान उदित हो जाते हैं, जिनके कारण जीव हिंसादि पाप भी कर डालता है। इच्छित वस्तु की उपलब्धि यदि ऋजुमार्ग से सम्भव नहीं होती, तो अनेक जीवों में माया कषाय का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार इन्द्रियों की भोगप्रवृत्ति तीव्रकषाय का निमित्त है।

विषयों में इष्टानिष्टबुद्धि के निमित्त से तो तीव्रकषाय का उदय केवल मिथ्यादृष्टियों में ही होता है, किन्तु इन्द्रियों के भोगव्यसन के निमित्त से असंयत तथा संयतासंयत सम्यग्दृष्टियों में भी होता है। आचार्य जयसेन का कथन है-

'जैसे कोई चोर मरना नहीं चाहता, तो भी कोतवाल के द्वारा पकड़े जाने पर उसे विवश होकर मरना पड़ता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि जीव, यद्यपि आत्मोत्पन्न सुख को उपादेय तथा विषयसुख हो हेय समझता है, तो भी चारित्रमोहोदयरूप कोतवाल के वश में होकर विषयसुख का भोग करता है।' (समयसार/तात्पर्यवृत्ति/गाथा 194)

विषयसुख को हेय समझने पर भी उसे भोगने के लिए विवश करने वाला यह चारित्रमोह का उदय इन्द्रियों की भोगवासना के निमित्त से ही होता है, जैसे आहार को हेय समझने पर भी मुनि में आहार की इच्छा पैदा करनेवाला चारित्रमोहोदय शरीर की आहारवृत्ति के निमित्त से होता है।

इस प्रकार इन्द्रियों की भोगवासना संक्लेश का प्रबलतम कारण है। इन्द्रियसंयम से संक्लेशपरिणाम का यह महान् स्रोत अवरुद्ध हो जाता है। इन्द्रियों को अनावश्यक विषयसेवन से क्रमशः निवृत्त करने पर उनका भोगाभ्यास छूट जाता है और उनमें विषयभोग के लिए पीड़ाकारक उद्दीपन नहीं होता। फलस्वरूप वे असातावेदनीय एवं तीव्रकषाय (विषयाकांक्षा) के उदय का निमित्त नहीं बन पातीं।

पूज्यपाद स्वामी कहते हैं- 'रसपरित्याग आदि तप के द्वारा इंद्रियों के मद का निग्रह होता है।' (सर्वार्थसिद्धि 9/19) आचार्य जयसेन का कथन है- 'शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, ये इन्द्रियविषय रागादि भावों की उत्पत्ति के बहिरंग कारण हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिए। (शब्दादयो रागादीनां बहिरंगकारणास्त्याज्याः। समयसार/तात्पर्यवृत्ति 366-371) उन्होंने बतलाया है कि इन्द्रिय-विषयों के त्याग से चित्त क्षोभरहित (संक्लेशरहित) हो जाता है। (बहिरङ्गपञ्चेन्द्रियविषयत्यागसहकारित्वेनाविक्षिप्तचित्तभावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसबलेन...। वही/उत्थानिका) कषायों के तीव्रोदय में ही चित्त क्षुब्ध होता है, (पञ्चास्तिकाय/तत्त्वदीपिका/गाथा 138) अतः स्पष्ट है कि संयम तीव्रकषायोदय के निरोध का निमित्त है।

पंडित टोडरमल जी का कथन है- 'बाह्य पदार्थ का आश्रय लेकर रागादि परिणाम हो सकते हैं। इसलिये परिणाम मिटाने हेतु बाह्य वस्तु के निषेध का कथन समयसारादि में है। यह नियम है कि बाह्य संयम साधे बिना परिणाम निर्मल नहीं हो सकते। अतः बाह्य साधन का विधान जानने के लिए चरणानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। (मोक्षमार्ग-प्रकाशक/पृ.292)

तप का मनोविज्ञान

अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, कायक्लेश आदि बाह्य तपों के द्वारा भी शरीर को परद्रव्य की अधीनता से अधिकाधिक मुक्त करने का अभ्यास किया जाता है, जिससे शरीर परद्रव्यजन्य सुख का अभ्यस्त नहीं होता। फलस्वरूप परदव्य का सेवन न करने पर असातावेदनीय का उदय नहीं होता तथा असातावेदनीयजन्य पीड़ा के अभाव में परद्रव्येच्छारूप तीव्रकषाय का उदय नहीं होता। तप से शरीर स्वस्थ भी रहता है, प्रमादग्रस्त नहीं होता। (तत्त्वार्थवृत्ति 9/19) अतः रोग, आलस्य आदि से मुक्त रहने के कारण भी संक्लेशोत्पादक असातावेदनीय के उदय का निरोध होता है।

अपरिग्रह का मनोविज्ञान

बाह्य वस्तुओं के सम्पर्क से उनके संरक्षण, संवर्धन, परिष्करण आदि की चिन्ता उत्पन्न होती है। उनकी रक्षा के प्रयत्न में दूसरों के साथ संघर्ष होता है। हिंसा के प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं। अतः परिग्रह असाता और क्रोधादि के उदय का निमित्त होता है। जितनी ज्यादा वस्तुओं से सम्पर्क छूटता है उनके संरक्षणादि की चिन्ता से हम उतने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही अधिक मुक्त हो जाते हैं। अतः अपरिग्रह के निमित्त से असातावेदनीय एवं तीव्रकषाय के उदय *का निरोध होता है*, जिससे विशुद्धता का विकास निर्बाध चलता रहता है।

आचार्य अमृतचन्द्रजी ने कहा है- 'यद्यपि रागादिभावरूप हिंसा की उत्पत्ति में बाह्य वस्तु कारण नहीं है (चारित्रमोह का उदय कारण है), तथापि रागादिपरिणाम परिग्रहादि के निमित्त से ही होते हैं, इस कारण परिणामों की विशुद्धि के लिए हिंसा के निमित्तभूत परिग्रहादि का त्याग करना चाहिए। (पुरुषार्थसिद्धयुपाय/ कारिका 49)

वे आगे कहते हैं- 'मूर्च्छा (ममत्वपरिणाम) को आभ्यन्तर परिग्रह कहते हैं, वह बाह्य परिग्रह के निमित्त से भी उत्पन्न होती है। अतः दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करना चाहिए।(पुरुषार्थसिद्ध-युपाय/ कारिका 113, 118)

सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं- 'रागद्वेष दूर करने के लिए या कम करने के लिए बाह्य पदार्थों का भी त्याग किया जाता है। स्वभाव में लीन होने के लिए क्रम से बाह्य प्रवृत्ति को रोकना होता है और बाह्य प्रवृत्ति को रोकने के लिए प्रवृत्ति के विषयों को त्यागना होता है। अतः स्वभाव में लीन होने के लिए यह आवश्यक है कि हम अव्रत से व्रत की ओर आयें। ज्यों-ज्यों हम स्वभाव में लीन होते जायेंगे, प्रवृत्तिरूप व्रतनियमादि स्वतः छूटते जायेंगे। (द्रव्यस्वभाव प्रकाशकनयचक्र/ विशेषार्थ/गाथा 342)

संक्लेशपरिणामों का निरोध भक्ति एवं स्वाध्याय से भी होता है, किन्तु उनमें चित्त की एकाग्रता तब तक सम्भव नहीं है, जब तक इन्द्रियों की भोगवृत्ति नियंत्रित नहीं हो जाती। इन्द्रियों के निरन्तर उद्दीपन से पीड़ित चित्त, विषयों की ओर ही बार-बार जाता है। ऐसे चित्त का भक्ति में एकाग्र होना दुष्कर है। इस अवस्था में स्वाध्याय तो और भी असम्भव है, क्योंकि भक्ति में तो संगीतादिजन्य कुछ सरसता भी होती है, किन्तु स्वाध्याय तो इस प्रकार की सरसता से रहित शुद्ध बौद्धिक कार्य है। इसीलिए आगम में इन्द्रियों का भोगव्यसन श्रुतज्ञानावरण का नोकर्म अर्थात् बाह्य निमित्त कहा गया है। जो विषयों में लीन रहता है उसकी रुचि तत्त्वचिन्तन की ओर उन्मुख नहीं होती। इसलिए श्रुतज्ञान न होने देने में इन्द्रियों का भोगव्यसन प्रबल बाह्य निमित्त है। (गोम्मटसारकर्मकाण्ड/गाथा 70)

इस प्रकार संयम, तप और अपरिग्रह विशुद्धता की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक साधन है।

137, आराधनानगर,
भोपाल-462003

गीत

सिर्फ हाशिये पर जीने की दे हमको लाचारी

● *अशोक शर्मा*

सिर्फ हाशिये पर जीने की दे हमको लाचारी
तुमने अपने लिखे कथानक आकर बारी-बारी।
ऐसा नहीं कि तुम ही केवल रङ्गमंच पर खेले
हमने भी तो साथ तुम्हारे मिल कर मौसम झेले
तुम पर्दों के पीछे खेले हम पर्दों के आगे
हमने हर आगत स्वीकारा तुम ही डरकर भागे
अपने नाम लिखा ली तुमने वह पूरी फुलवारी
जिसकी हमने लहू पिलाकर सींची क्यारी-क्यारी।1।
ऐसा नहीं कि तुम ही केवल पीड़ा गाँव दिखे
हमने भी जलते अलाव पर अपने पाँव रखे
हमने वार सहे सीनों पर तुमने देह चुराई
देह हमारी रक्त-नदी में मल-मल अंग नहाई
पटी हुई लाशों पर तुमने भर-भर कर किलकारी
नए दिवस की सुबह दूधिया थाल सजा सत्कारी।2।
ऐसा नहीं कि तुम ही केवल आँख भिगो कर रोये
हमने भी कुछ मुर्दा सपने इन आँखों में ढोये
इतिहासकार ने लिखा तुम्हारा सोने का इतिहास
उत्सर्गों की कथा हमारी महज़ हास-परिहास!
ताज पहन सिंहासन बैठे तुम लगते सरकारी
वन्दनगीत तुम्हारे गाते हम लगते दरबारी।3।

36/बी, मैत्री विहार, सुपेला,
भिलाई (दुर्ग) छत्तीसगढ़

बादल का मन

● *श्रीपाल जैन 'दिवा'*

बादल का भी मन करता है चल कर बरसूँ गाँव में,
तपा हुआ मन शीतल होले मानवता की छाँव में।
सावन की रिम-झिम रिम-झिम में धरती प्यास बुझाती है,
भादौं की झर झम-झम करती नदिया बेबस गाती हैं।
ताल-तलैयों का मन भरता, झींगुर तान सुनाती है,
दादुर का संगीत सुनावे ठुमकी केकी पाँव में। बादल का भी....
यहाँ रास्ते टेढ़े-मेढ़े दिल के सीधे रस्ते हैं,
यहाँ मनुज अब भी मानव हैं भाव सुमन भी सस्ते हैं।
यहाँ प्राण की ऊषा चुनरी रँगी हुई सब लाल हैं
मन के मोती पिरे हुए हैं अमराई की छाँव में। बादल का भी...
खंजन सी आँखों वाली जब शरद यहाँ भी आ जाती,
पीहू-पीहू की पुकार सुन हरियाली फिर मस्ताती।
धरती की चूनर पर लौटे श्रम के देवी-देव
नभ के तन से मोती झरते वह पावस है गाँव में। बादल का...
यहाँ बीज बोते हैं गाकर, धोली रात उगाते हैं
सूरज रोज उगाने वाले, जीवन गीत सुनाते हैं।
आँखें मलते अँकुर फूटे, तारे प्रीत बहाते हैं।
धरती सब मखमली हो गई, स्वेद गगन की छाँव में। बादल का...

शाकाहार सदन,
एल.-75, केशर कुंज, हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका - समाधान

● पं. रतनलाल बैनाड़ा

शंका- असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा कब-कब होती है?

समाधान- तत्वार्थसूत्र अध्याय-9, सूत्र-45 'सम्यग्दृष्टि श्रावक .... निर्जरा' सूत्र में जो सम्यक्दृष्टि, श्रावक को आदि ले निर्जरा के 10 स्थान बताए हैं, उन सभी स्थानों में असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा होती है।

प्रतिसमय असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा होने वाले स्थानों को इस प्रकार समझना चाहिए-

1. कोई भव्य पंचेन्द्रिय सैनी पर्याप्तक सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव करण लब्धि के काल में अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में जितने कर्मों की निर्जरा करने वाला होता है, वह जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तो प्रतिसमय असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा वाला होता है।
2. वही जीव जब देशव्रत नामक पंचम गुणस्थान को प्राप्त होता है तब बढ़ती हुई विशुद्धि के अंतर्मुहूर्त काल तक।
3. वही जीव जब अप्रमत्तविरत गुणस्थान को प्राप्त कर बढ़ती हुई विशुद्धि वाला होता है, उतने अन्तर्मुहूर्त काल तक।
4. कोई क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि चौथे से सप्तम गुणस्थान वाला जीव जब अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है तब।
5. कोई क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव (चौथे से सातवें गुणस्थान वाला) जब दर्शन मोह की क्षपणा करता है तब अन्तर्मुहूर्त काल तक।
6. कोई उपशमश्रेणी चढ़ने वाले मुनिराज।
7. उपशांत मोह नामक 11वें गुणस्थान वाले मुनिराज, विशुद्धि के बढ़ने वाले काल में।
8. क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले मुनिराज।
9. क्षपकश्रेणी वाले क्षीणमोह गुणस्थान स्थित मुनिराज।
10. समुद्घातगत सयोगकेवली एवं चौदहवें गुणस्थान स्थित अयोगकेवली महाराज।

विशेष यह है कि चतुर्थ गुणस्थान में प्रतिसमय निर्जरा नहीं होती। केवल उपर्युक्त स्थान नं. 1 एवं स्थान नं. 4,5 में अंतर्मुहूर्त काल तक तो प्रतिसमय असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। शेष कालों में कभी भी निर्जरा तो संभव है पर प्रतिसमय असंख्यातगुणी निर्जरा संभव नहीं।

इसी तरह उपर्युक्त स्थान नं. 2 में पंचम गुणस्थानवर्ती जीव के प्रवेश के अन्तर्मुहूर्त काल तक, विशुद्धि बढ़ने के काल में, उपर्युक्त निर्जरा है, शेष कालों में प्रतिसमय चतुर्थ गुणस्थानवर्ती से असंख्यात गुणी निर्जरा तो है पर गुणश्रेणी निर्जरा नहीं।

इन सभी दश स्थानों में उत्तरोत्तर गुणश्रेणी निर्जरा के लिए असंख्यात गुणा द्रव्य प्राप्त होता है किन्तु आगे-आगे गुणश्रेणी का काल संख्यातगुणा हीन-हीन है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के गुणश्रेणी निर्जरा के अन्तर्मुहूर्त काल से श्रावक का काल संख्यातगुणा हीन है पर श्रावक की निर्जरा सम्यग्दृष्टि से असंख्यातगुणी अधिक है। ऐसे ही आगे जानना चाहिए। यह भी जानना चाहिए कि

1. अविपाक निर्जरा का प्रारंभ अधिकांश विद्वान चतुर्थ गुणस्थान से मानते हैं, जो उचित नहीं है। धवल पुस्तक 12, पृष्ठ 468 के अनुसार करणलब्धि प्राप्त मिथ्यादृष्टि के अविपाक निर्जरा होती है।

2. तथा तीनों में से किसी भी अविरत सम्यग्दृष्टि के प्रतिसमय निरंतर गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती।

शंका - क्या भोगभूमि में विकलेन्द्रिय तथा असैनी पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं?

समाधान-

संखपिपीललय-मक्कुण-गोमच्छी-दंसमसय किमि पहुदी।
वियलिंदिया ण होंति हु, णियमेणं पढम कालम्मि।।

(तिल्लोयपण्णत्ति 335)

अर्थ - प्रथम (सुषमासुषमा) काल में नियम से शंख, चीटी, खटमल, गोमक्षिका, डाँस, मच्छर और कृमि आदिक विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते।

णत्थि असण्णी जीवो, णत्थि तहा सामिभिच्च भेदो य।
कलह-महाजुद्धादी, ईसा-रोगादि ण हु होंति।।

(तिल्लोयपण्णत्ति 336)

अर्थ- इस काल में असंज्ञी जीव नहीं होते, स्वामी और भृत्य का भेद भी नहीं होता, कलह एवं भीषण युद्ध आदि तथा ईर्ष्या और रोग आदि भी नहीं होते हैं।

श्री धवलपुस्तक 4 पृष्ठ 33 पर भी इस प्रकार कथन है-

भोगभूमिसु पुण विगलिंदिया णत्थि। पंचिंदिया वि तत्थ सुट्ठु थोवा, सुहकम्माइ जीवाणं बहुणाम संभवादो।

अर्थ- भोगभूमि में तो विकलत्रय जीव नहीं होते हैं और वहाँ पर पंचेन्द्रिय जीव भी स्वल्प होते हैं, क्योंकि शुभकर्म की अधिकता वाले बहुत जीवों का होना असंभव है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि भोगभूमि में विकलेन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं।

शंका- भगवान सुपार्श्वनाथ की मूर्ति पर भी सर्प का फण कहीं-कहीं बनाया जाता है। क्या इनके ऊपर भी उपसर्ग हुआ था?

समाधान- तिल्लोयपण्णत्ति चतुर्थ अधिकार में इस प्रकार कथन पाया जाता है-

एक्करस होंति रुद्दा, कलहपिया णारदाय णव-संखा।
सत्तम-तेवीसंतिम-तित्थयराणं च उवसग्गो।। 1642।।

अर्थ- ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा सातवें, तेईसवें और अंतिम तीर्थकर पर उपसर्ग भी होता है।

उपर्युक्त प्रमाण से यह स्पष्ट है कि भगवान् सुपार्श्वनाथ पर भी उपसर्ग हुआ था। तीर्थंकरों के जीवन चरित्र के सर्वप्रथम वर्णन करने वाले शास्त्र आदिपुराण एवं उत्तरपुराण ही हैं। इनमें जब हम भगवान् सुपार्श्वनाथ का जीवन चरित्र पढ़ते हैं तब उसमें कहीं भी उनके ऊपर उपसर्ग होने का प्रमाण नहीं मिलता।

अतः भगवान सुपार्श्वनाथ की मूर्ति पर सर्प का फ़ण क्यों बनाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है, इसका कोई आगम प्रमाण नहीं है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् डॉ. मारुतिनंदन तिवारी ने कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ का नाम लगभग एक सा होने से ऐसी मूर्ति बनना प्रारंभ हुआ।

शंका- क्रोधादि कषाय और हास्यादि नौ नोकषायों में क्या अंतर है?

समाधान- नोकषाय का अर्थ किंचित कषाय है। अर्थात ये कषाय तो हैं पर क्रोध, मान आदि कषायों की तरह नहीं। जिस प्रकार स्थिति और अनुभाग डालने में चार कषायें समर्थ होती हैं उस तरह ये नोकषायें स्थिति और अनुभाग डालने में समर्थ नहीं हैं। ये भी जब तक चार कषायें हैं तभी तक पायी जाती हैं। कषायों के पूर्णतः नष्ट होने के पहले ही नष्ट हो जाती हैं तथा कषायों के साथ ही उदय में आतीं हैं अलग से उदय में नहीं आती। इसलिए कषाय होते हुए भी किंचित् कषाय हैं। जैसे कोई छोटा बच्चा पिताजी के साथ उनकी ऊँगली पकड़कर मेला देखने जाता है उसी तरह ये नोकषाय भी कषायों के सान्निध्य में कार्य करती हैं।

शंका- तीर्थंकरों के एक से अधिक गणधरों का होना शास्त्रों में लिखा है। परन्तु भगवान महावीर के काल में केवल श्री गौतम गणधर ही सभी प्रश्नों का उत्तर देते थे। तो क्या अन्य गणधर कुछ नहीं करते?

समाधान- श्री उत्तरपुराण पृष्ठ 123 पर श्लोक नं. 37 में इस प्रकार कथन है-

जयाख्यमुख्यपञ्चाशद्गणभृद्वृंहितात्मवाक्।

अर्थ - जय आदि पचास गणधरों के द्वारा उनकी दिव्य ध्वनि का विस्तार होता था।

श्री उत्तरपुराण पृ. 494 में इस प्रकार लिखा है-

सकौतुकः समभ्येत्य सुधर्मगणनायकम्।
भक्तिकोऽभ्यर्च्य वन्दित्वा यथास्थानं निविश्य तम्।।
प्राञ्जलिर्भगवन्नेष यतीन्द्रः सर्वकर्मणा।
मुक्तो वाद्यैव को वेति पप्रच्छ प्रश्रयाश्रयः।।

अर्थ- कोतुक के साथ भीतर जाकर श्रेणिक राजा ने सुधर्म गणधर देव की बड़ी भक्ति से पूजा-वंदना की तथा यथायोग्य स्थान पर बैठ हाथ जोड़कर बड़ी विनय से उनसे पूछा कि हे भगवन्, जो मानो आज ही समस्त कर्मों से मुक्त हो जायेंगे ऐसे ये मुनिराज कौन है?

इससे स्पष्ट होता है कि मुख्य गणधर के अलावा अन्य गणधर भी प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

शंका- आयुकर्म के अनुभाग में क्या अंतर होता है समझाइये?

समाधान- इन्द्र और सामानिक, दोनों जाति के देवों की आयु, भोग सामग्री, परिवार, शक्ति, स्थान आदि समान होते हैं। परन्तु इन्द्र की आज्ञा और ऐश्वर्य में विशेषता होती है। इन्द्र की आज्ञा चलती है सामानिक की नहीं। इन्द्र बंधन रहित होते हैं जबकि सामानिक देवों के ऊपर, इन्द्र होने से, वे बंधनसहित होते हैं। यहाँ आयु की स्थिति तो समान है पर अनुभाग भिन्न। जैसे कोई दो व्यक्ति जेल में हैं परन्तु कोई ए श्रेणी में है और कोई बी श्रेणी में। इसी प्रकार आयुकर्म के विपाक में अंतर समझना चाहिए।

शंका- महासती अत्तीमव्वे कौन थीं?

समाधान- चालुक्य वंश के महादण्डनायक वीर नागदेव की पत्नी थी। एक बार नागदेव युद्ध करते हुए शत्रु को खदेड़ते हुए उसे गोदावरी के उस पार तक ले गये थे। पीछे से गोदावरी में भयंकर बाढ़ आ गयी। डर यह था कि शत्रु को यदि बाढ़ का पता लग गया तो वह नागदेव को पीछे खदेड़ देगा और सब नदी में डूबकर मरण को प्राप्त हो जायेंगे। यह भी समाचार आया कि नागदेव जीत तो गये हैं पर अर्द्धमृत से हो गये हैं। सती अत्तीमव्वे उनको अपने खेमे में लाना चाहती थी। नदी के उफान के कारण मजबूर थी। वह अचानक तेजी से निकली और नदी के किनारे खड़े होकर कहने लगी कि यदि मैं पक्की जिनभक्त और अखण्ड पतिव्रता होऊँ तो हे गोदावरी नदी, मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तेरा प्रवाह उतने समय के लिए रुक जाए जब तक हमारे परिवारी जन इस पार नहीं आ जाते। तुरंत ही नदी का प्रवाह घट गया और स्थिर हो गया। वह गई और अपने पति को ले तो आई पर बचा न सकी। शेष जीवन उसने उदासीन धर्मात्मा श्राविका के रूप में घर में बिताया। उसने स्वर्ण एवं रत्नों की 1500 जिन प्रतिमाएँ बनवाकर विभिन्न मंदिरों में विराजमान कीं। महाकवि पोन्न के शांतिपुराण की कन्नड़ भाषा में 1000 प्रतियाँ लिखाकर शास्त्र भण्डारों में वितरित कीं। निरंतर दान देने के कारण उसे 'दान चिंतामणि' कहा जाता था। उपर्युक्त कथा शिलालेख से प्रमाणित है।

●

सत्कारज और दान ही, कीर्ति के संजोग

● डॉ. विमला जैन 'विमल'

दान की महिमा अगम है, शारद सकहि न गाय,
मेघ न देता दान जो, पृथ्वी बाँझ रहाय।
सागर लेता जल रहे, सब नदियन से माँगे,
मीठा जल खारी बने, प्राणी करहि न राग।
जलनिधि नीचा ही रहे, लेता रहता दान,
जलद सदा उत्कृष्ट बन, जीवन देता दान।
मेघ समान है सम्पदा, कबहूँ थिर न रहाय,
ना बरसहिं यदि पयद तो, मारुति देत उड़ाय।
दान भोगकर सम्पदा, नतरु धरी रह जाय,
जैसे काया मनुज की, मिट्टी में मिल जाय।
लक्ष्मी चपला चंचला, पकड़ सके ना हाथ,
दान दिये चेरी भयी, भव-भव देगी साथ।
अवसर पाये दान कर, अवसर चूको नाय,
समय चूक पछताय मत, गयी घड़ी ना आय।
दान से बढ़कर नाहि है, कोई उत्तम कर्म,
पर देता सत्पात्र को, देखि समय का मर्म।
लेना दान बुरा नहीं, बढ़कर दे लौटाय,
भूमि बीज ले अङ्क में, अनगिन बीज उगाय।
दान दिये यश पाओगे, लाभ मिले तत्काल,
कीर्ति अमर संसार में, मिटा सकहि ना काल।
कीर्ति रहित जीवन सदा, व्यर्थ मानते लोग,
सत्कारज और दान ही कीर्ति के संजोग।
आयु वायु सम अथिर है, चंचल तड़ित समान,
'विमल' शान्ति-सुख चाहना, दे निज कर से दान।

1/344 सुहाग नगर,
फिरोजाबाद-283203

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साझे की सुई

● शिखरचन्द्र जैन

'सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में जो काम होते हैं, वे सामूहिक जिम्मेवारी के आधार पर होते हैं। जैसे कि एक सुई खरीदनी है, तो चार कर्मचारी बाजार जाते हैं और सुई ठेले पर लाद कर ले आते हैं। कहा भी है कि साझे की सुई ठेले पर लदकर जाती है। पर यदि उद्योग का प्रबन्ध निजी हाथों में गया तो फिर ऐसा थोड़े ही हो पायेगा। वे तो सुई लेने एक आदमी भेजेंगे और कहेंगे कि जेब में रखकर लेते आना।' सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की व्यवस्थागत भिन्नता को अनावृत करता है यह मर्मस्पर्शी व्यंग्य।

आदमी और शेर में फर्क होता है। आदमी और हाथी में भी फर्क होता है। इसी तरह आदमी और घोड़े में भी फर्क होता है। इस धारणा के वशीभूत हो, वो लोग जो रिंग मास्टर के इशारे पर नाचते-करतब दिखाते शेर, हाथी व घोड़े को देखने सर्कस में जाते हैं, मेरे ख्याल से, व्यर्थ ही अपना समय और पैसा बर्बाद करते हैं। क्योंकि कोड़े के भय अथवा भोजन की लालच से किसी भी प्राणी से कोई भी काम करवा लेना कतई मुश्किल काम नहीं है, कोई जीवट का कार्य नहीं है। जबकि इसके विपरीत, किसी सरकारी अफसर का, प्यास लगने पर, अपने पक्की नौकरी वाले चपरासी से एक ग्लास पानी तुरंत प्राप्त कर लेना अथवा आवश्यक होने पर, संबंधित फाइल बड़े बाबू से तत्काल निकलवा लेना अथवा अन्य किसी मातहत से, जरूरत के मुताबिक फौरन काम करवा लेना, सचमुच ही दुष्कर कार्य है, जीवट का काम है। दरअसल ऐसा कोई करतब सर्कस में दिखाया जाना चाहिए। पर जो नहीं दिखाया जाता तो केवल इस कारण कि ऐसा कौशल दिखा सकने वाले अफसर अब दुर्लभ हैं।

कहते हैं कि मानव के स्वभाव को, चरित्र को, व्यवहार को, जानने-समझने का प्रयत्न सृष्टि के प्रारंभ से ही चल रहा है। और इस मामले में अब तक जो प्रगति हुई है उसमें एक बात तो यह तय पायी गई है कि मानव-समाज के आधे सदस्यों के चरित्र को देवता भी नहीं जान पाये हैं अतएव किसी व्यक्ति का अब इस दिशा में कोई भी अनुसंधान करना बेमतलब है। **तथा दूसरी बात यह निश्चित पायी गई है कि मनुष्य मूलतः एक आलसी प्राणी है। अतः यदि वह अपने खाने-पीने का जुगाड़ बिना किसी परिश्रम के कर सके तो उसके लिये इससे अधिक स्वागतेय स्थिति अन्य कोई नहीं हो सकती। जाहिर है कि सारी मारा-मारी केवल इस बात को लेकर है कि कम से कम काम करके अधिक से अधिक सुख का उपभोग किस तरह किया जा सके।**

मानव स्वभाव के इस मूलगुण को जरा विस्तार से समझना समीचीन होगा। **इतिहास बतलाता है कि प्राचीन काल से ही आदमी अपने हिस्से का काम, दूसरे से करवा लेने की जुगत में लगा रहा है और इस प्रयास में आंशिक सफलता प्राप्त करते हुए उसने बैल को नकेल, घोड़े को लगाम और हाथी को अंकुश के द्वारा वश में करते हुए अपना बहुत सारा काम उन पर लाद दिया जो कि अभी तक लदा हुआ है। लेकिन, इसके बाद भी जब काफी काम बचा रहा तो उसने अपने से कमजोर व्यक्ति से वह काम करवा लेने के उद्देश्य से समाज की संरचना की, जातियाँ ईजाद कीं, बहुतेरे सिद्धांत प्रतिपादित किए, बाहुबल में वृद्धि की और इन सबके सम्मिलित प्रयोग से अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।**

शनैः-शनैः मानव-समाज, स्पष्ट रूप से दो विभिन्न वर्गों में विभाजित हो गया। एक वर्ग में रहे वो जो काम करवाते थे और दूसरे में थे वो जिनकी नियति थी काम करना। संक्षेप में इन्हें, क्रमशः शासक और शासित वर्ग कहा गया! आरम्भिक अवस्था में, शासक वर्ग में, लोगों की संख्या काफी कम थी। इसका कारण यह था कि उन दिनों संसार के सारे सुख केवल शासक वर्ग के लिए ही आरक्षित थे। अब, जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है, अव्वल तो संसार में सुख है ही नहीं, पर अगर छोटे-मोटे, मुश्किल से शहद की बूँद की माफिक हों भी तो उन्हें बहुत सारे लोगों में तो नहीं बाँटा जा सकता था न! इसलिए शासक वर्ग तब राजा-महाराजा, शहंशाह-बादशाह तक ही सीमित था। शेष सभी मनुष्य शासित वर्ग में हुआ करते थे जो कि बाकायदा शासकों की बेगारी करने को बाध्य थे। शासितों से काम लेने हेतु भी शासक तकरीबन वैसे ही हथकंडे अपनाते थे जैसे अन्य प्राणियों को वश में करने के लिए। दासों को निरंतर कार्यरत रखने हेतु बेड़ियाँ और कोड़े सर्वथा प्रभावी उपकरण माने जाते थे।

यह स्थिति सैकड़ों वर्षों तक रही। शासक निर्विघ्न सुख भोगते रहे और शासित दुख। शास्त्रों ने इसे पूर्वोपार्जित कर्मों का प्रतिफल बतलाते हुए आश्वस्त किया कि सत्कर्म करने से अगले जन्म में शासक वर्ग में जन्म लेना सुनिश्चित किया जा सकेगा। बहुतेरे शासितों ने दुःख भोगना अपनी नियति मानते हुए इस स्थिति से समझौता कर लिय। अन्यों ने प्रारब्ध को दोष दिया और चुप हो लिए। इस तरह बहुसंख्यक शासित, एक लम्बे समय तक, यथास्थिति बनाए रखने में शासकों के सहायक बने रहे।

लेकिन समय कितना भी लम्बा हो, गुजर ही जाता है। आदमी कितना ही संतोषी हो, सुख का लालच उसे व्याकुल कर ही देता है तथा पकड़ कितनी ही मजबूत हो, देर-सबेर, ढीली पड़ ही जाती है। इसलिये, इन सिद्धांतों के अनुरूप, जब कालांतर में शासकों को यह महसूस हुआ कि शासितों पर उनका नियंत्रण कमजोर पड़ता जा रहा है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने एक सूझी-बूझी रणनीति के अंतर्गत शासित वर्ग की ऊपरी सतह से कुछ बुद्धिजीवियों को अपने वर्ग में खींच लिया और उनकी मदद से शेष शासितों पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। इसके लिये तब, बाहुबल के अलावा, साम, दाम और भेद का सहारा भी लिया जाने लगा और इस तरह एक बार फिर शासकों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी।

यों करने को तो श्रेष्ठता सिद्ध कर दी शासकों ने, लेकिन एक बात शासितों की भी समझ में आ गई कि शासक वर्ग में सम्मिलित होने के लिए, उन्हें, वस्तुतः, अगले जन्म तक प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं था। जो कुछ जरूरी था, वह था, शासकों की पकड़ ढीली कर देने के लिए जोरदार प्रयास! इस अद्भुत रहस्य के उजागर होते ही शासितों ने, सामूहिक रूप से, शासकों की श्रेणी में घुस-बैठने के लिए, भागीरथ प्रयत्न प्रारंभ कर दिए और फिर आविर्भाव हुआ एक क्रांति का जो अनवरत चलती हुई, काफी उठा-पटक, झगड़ा-झंझट, मार-पीट और अन्तराल के बाद प्रजातंत्र स्थापित करने में सफल हुई। इस क्रांति ने, आदमी को संगठित प्रयासों के चमत्कारिक परिणामों से अवगत कराया, संगठन के महत्त्व से परिचित कराया, सदा एक-जुट होकर ही काम करने हेतु संकल्पित किया।

यहाँ प्रजातंत्र की प्रशस्ति में दो शब्द कह देना उपयुक्त होगा। प्रजातंत्र, शासन की वह पद्धति है जिसमें कोई शासित नहीं होता। अर्थात् सभी शासक होते हैं और चूँकि प्रजातंत्र में केवल शासक ही होते हैं इसलिये लोग आपस में एक-दूसरे पर ही शासन करने हेतु उतारू रहते हैं। इसके लिये वो बाकायदा संगठन बनाते हैं जिसे राजनीतिक दल कहा जाता है। ये दल अनेक होते हैं तथा राष्ट्रीय, प्रदेशीय, क्षेत्रीय या नगरीय, कुछ भी हो सकते हैं। इन सभी राजनीतिक दलों का एक सूत्रीय कार्यक्रम होता है- येन केन प्रकारेण सत्ता-सुख प्राप्त करना, जिसके लिए उन्हें जनता का बहुमत प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस हेतु सभी दल, जनता को प्रभावित कर रखने के सभी संभव हथकंडे अपनाते हैं। लुभावने वादे करते हैं। जाति की, धर्म की, क्षेत्र की, कर्म की दुहाई देते हैं। सभी के हिस्से में सुख की बराबर मात्रा उपलब्ध करा देने का संकल्प लेते हैं और जनता, बाकायदा इन वादों पर विश्वास करते हुए, कभी एक दल को तो कभी दूसरे को सत्ता के आसन तक पहुँचाती रहती है।

इस तरह, अनगिनत बाधाओं को पार कर जब कोई राजनीतिक दल अथवा दलों का समूह सत्ता पर काबिज़ होता है तो उस पर अनेक जिम्मेवारियाँ आ पड़ती हैं। मसलन, मंत्रीपरिषद् में स्थान न पा सकने वाले सदस्यों के आक्रोश को झेलना। दल के उन महत्त्वपूर्ण नेताओं को जो चुन कर नहीं आ पाते हैं, निगमों के अध्यक्ष के पदों पर स्थापित करना अथवा स्थापित करने हेतु नए निगमों का गठन करना, आदि-आदि!

कहते हैं कि हमारे देश में, प्रजातंत्र के आरम्भिक काल में, इस तरह की बाध्यताएँ नहीं थीं। तब राजनीतिक दलों में कुछ हद तक अनुशासन भी पाया जाता था। सत्तारूढ़ दल सहसा ही विघटित नहीं हो जाया करते थे। आयाराम-गयाराम का प्रचलन प्रारंभ नहीं हुआ था। छींक आते ही समर्थन वापिसी की घोषणा भी तब नहीं हुआ करती थी। ऐसे सौम्य, शांत और सर्वथा अनुकूल वातावरण में, जाहिर है कि, अन्य व्यस्तताओं के बावजूद, सत्ताधारी लोग, जनता का जीवन भी सुखमय बनाने के विषय में चिंतन करने हेतु थोड़ा समय निकाल ही लेते थे तथा देश के विकास की दिशा में, हल्के से ही सही, एक-दो कदम बढ़ा ही लेते थे। ऐसे ही सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप स्थापित हुए देश के सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक उद्योग, जिनमें विदेशी सहायता से, जनता के कर्ज से तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त राशि से किया गया भारी निवेश। साथ ही बने बहुतेरे मंत्रालय, विभाग, अनुभाग, संचालनालय, नियंत्रणालय आदि, जिनका काम था इन उद्योगों पर निगरानी रखना, उन पर नियंत्रण रखना, उन्हें जनता के प्रति उत्तरदायी बनाए रखना।

सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गए उद्योगों का सभी ने स्वागत किया। जिन विदेशियों ने कर्ज दिया, मशीनें दीं, तकनीक दीं, जिन अफसरों की देख-रेख में उद्योग स्थापित हुए, जिन ठेकेदारों ने निर्माण कार्य किया, जिन लोगों को इन उद्योगों में नौकरी मिली तथा जिन कर्मचारी संघों को विस्तार का अवसर मिला, वे सभी अत्यंत प्रसन्न हुए। कुल मिलाकर यह एक ऐसा निर्णय था जिसने सरकार और विपक्ष दोनों को समान रूप से आह्लादित किया। लगा कि देश के विकास की सही कुंजी हाथ लग गई है। मंतव्य बना कि अधिक से अधिक उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में लाये जावें। चाहे वो डबल रोटी बनाने के कारखाने हों, बैंक हों, कोयला खदाने हों, खोखले हो गए निजी कपड़े के मिल हों अथवा घाटे में चल रहे निजी इस्पात कारखाने। और यह सब प्रजातंत्र की मूल भावना के अनुरूप ही था। जो लोग सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में कार्यरत हुए वे कम से कम एक चौथाई सरकारी कर्मचारी तो कहलाए ही। सरकारी कर्मचारी कहलाए जाने की ललक किसे नहीं होती? सत्ता का सुख चटनी के माफिक भी मिले तो मुँह का जायका तो बदल ही जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित उद्योगों का महिमागान कई वर्षों तक चला। इस दौरान अधिक से अधिक लोगों को नौकरी मुहैय्या कराने का उत्तरदायित्व इन उद्योगों ने बखूबी निभाया। तकनीक व मशीनों के आधुनिकीकरण में अरबों-खरबों रुपयों का निवेश किया और कहा गया कि बस अब उद्योगों की हालत सुधरने को ही है। लेकिन उद्योग का गणित निराला ही होता है। इसमें उत्पादन करना होता है। उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखनी होती है। उत्पादन-लागत कम रखनी होती है। उत्पाद की बिक्री लागत से अधिक मूल्य पर करनी होती है। ऐसे तमाम काम करना होते हैं तब कहीं जाकर बेलेन्स-शीट धनात्मक बन पाती है। उद्योग चल पाता है।

पर जहाँ काम करने की बात उठती है वहाँ मानव स्वभाव के मूलगुण का आड़े आना स्वाभाविक ही होता है। दरअसल जबसे आदमी ने, आदमी से, आदमी की तरह व्यवहार करना आरम्भ किया तब से आदमी से काम करवा लेना और भी चुनौती पूर्ण कार्य हो गया। विदेशों में इसे बहुत पहले ही भाँप लिया गया था। अतः वहाँ प्रबंधकों को मनोविज्ञान तथा मानव-व्यवहारविज्ञान जैसे विषय पढ़ाए जाने लगे तथा मानव-प्रबंधन में प्रशिक्षित किया जाने लगा। हालाँकि, सार्वजनिक क्षेत्र के हमारे प्रबंधकों ने भी इनसे सीख ली, पर वे बिना किसी दबाव के अथवा उद्योग पर बिना कोई आर्थिक बोझ डाले, कर्मचारियों को काम करने हेतु, प्रेरित किए रहने की कला में पारंगत नहीं हो सके। इसके फलस्वरूप, कालांतर में सार्वजनिक क्षेत्र के बहुतेरे उद्योग तो निरंतर घाटे में चलते हुए अपने मूल-निवेश को बचा सकने में भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक्षम नहीं रहे। शेष ने, यदा-कदा, लाभ अर्जित किया जरूर, पर आधुनिकीकरण में पुनर्निवेश के कारण इनकी हालत भी संतोषजनक न रह सकी। ऐसे में, सरकार ने, सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ चुनिन्दा उद्योगों में, निजी निवेशकों को सहभागी बनने का आमंत्रण देते हुए, विनिवेश की एक महती योजना की घोषणा कर दी।

जाहिर है कि ऐसा कर सरकार ने मधुमक्खी के छत्ते में हाथ डाल दिया। देश भर में मजदूर संगठनों ने आसमान सिर पर उठा लिया। धरना, हड़ताल, घेराव, आत्म-दाह की धमकी दी। विपक्षी दलों ने सरकार की इस नीति को घोर जनविरोधी निरूपित करते हुए, खुलकर आलोचना की, निंदा की। लाखों करोड़ों रुपयों के बहुमूल्य उद्योगों को कोड़ी के भाव बेच देने की साजिश कहा। उद्योगों के कर्मचारियों की रोजी-रोटी छीन कर उन्हें दर-दर का भिखारी बना देने की कोशिश कहा। विदेशी कंपनियों को देश में बुलाकर फिर से गुलाम बना लिए जाने का अवसर देने की बात कही। साथ ही, जैसी कि प्रथा है, सत्तारूढ़ दल पर हजारों-करोड़ की राशि रिश्वत में लेने का आरोप लगाया तथा सरकार से इस्तीफे की माँग की।

यह प्रतिक्रिया आशा के बिल्कुल अनुरूप थी। अतः सरकार ने इसके जवाब में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं समझा। लेकिन कर्मचारी संगठनों ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का प्रबंध निजी हाथों में सौंपने का जबरदस्त विरोध करते हुए निरंतर घेराव वा प्रदर्शन कर विषय को गर्माये रखा। मीडिया ने भी समुचित सहयोग दिया। इंटरव्यू लिए और प्रसारित किए। विशेषज्ञों का पेनल बैठा कर चर्चा करवायी और इस सारी प्रक्रिया में जो बात उजागर हुई वो ये कि देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने हेतु, पिछले दस वर्षों में, हर सरकार, कमोवेश यही कदम उठाना चाहती थी और ये भी कि इस परिवर्तन में कर्मचारियों का हित सुरक्षित रखना, खुद सरकार के हित में था।

'तो फिर कर्मचारियों के भय का कारण क्या है?' चर्चा में प्रश्न उठा।

'निजीकरण का भूत' एक विशेषज्ञ ने उत्तर दिया, 'दरअसल होता यों है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में जो काम होते हैं, वे सामूहिक जिम्मेवारी के आधार पर होते हैं। जैसे कि एक सुई खरीदनी है तो चार कर्मचारी बाजार जाते हैं और सुई ठेले पर लाद कर ले आते हैं। कहा भी है कि साझे की सुई ठेले पर लद कर जाती है। पर यदि उद्योग का प्रबंध निजी हाथों में गया तो फिर ऐसा थोड़े ही हो पायेगा। वे तो सुई लेने एक आदमी भेजेंगे और कहेंगे कि जेब में रख कर लेते आना। साथ ही दो चीजें और ले आना। तो इसको एक कर्मचारी तो यही मानेगा कि चार आदमियों का काम एक से करवाया जावेगा। उस पर बोझ बढ़ेगा। उसका शोषण किया जाएगा।'

'तो उसे ऐसा क्यों नहीं मानना चाहिए?' दूसरे विशेषज्ञ ने प्रति-प्रश्न करते हुए कहा,- 'आखिर उसे सरकारी संरक्षण की सुखद छत्र-छाया से वंचित तो होना ही होगा। और रही बात काम की सो इसे यदि मानव-स्वभाव के मूलगुण की पृष्ठभूमि में देखें तो सरकार और सरकारी विभागों के सभी कर्मचारी एक ही नाव में सवार मिलेंगे। तब इनसे काम लेने के लिए क्या शासन को पुनः पुरानी पद्धति अपनाना होगी? फिर प्रजातंत्र का क्या अर्थ होगा? मानव-अधिकारों का क्या मूल्य होगा?'

'अब काम न करने के लिये प्रजातंत्र और मानव अधिकारों की दुहाई तो बेमतलब होगी।' पहले विशेषज्ञ ने उत्तर दिया, - 'अर्थशास्त्र जो कहेगा सो ठीक होगा। यदि निजीकरण से ही अर्थव्यवस्था का सुधार होना है तो वही करना होगा। खूब करना होगा। उन सभी कामों का करना होगा जो किए जा सकते हैं।'

'पर इसके लिये पहले कुछ उद्योग ही क्यों चुने गए?'

'इसे यों समझ लें कि जब किसी मशीन को ओवर-हालिंग के लिए खोला जाता है तो पहले एक पुर्जा खोलते हैं, फिर दूसरा और उसके बाद तीसरा। पर पुर्जे एक एक कर सभी अलग करने होते हैं। तभी ठीक से ओवर-हालिंग हो पाती है। दरअसल हमारे देश की अर्थव्यवस्था की ओवर-हालिंग बहुत जरूरी है। बहुत ही जरूरी।'

7/56-ए, मोतीलाल नेहरु नगर (पश्चिम), भिलाई (दुर्ग) (छ.ग.) 490020

मेरी उपलब्धि

मेरी उपलब्धि है तरुण जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी का सान्निध्य। एक ऐसे आचार्य से साक्षात्कार जो युवा है, जिनके मुख मंडल की मुस्कराहट और प्रवचन करने का ढंग सहसा चुम्बक सा खींच लेता है। प्रायः वे अपनी सरल, मृदु व सहजवाणी से शंकाओं का समाधान करते हैं। वस्तुतः तर्क से अतर्क में ले जाने का उनका दृष्टिकोण उत्कृष्ट है। तर्क को वे व्यर्थ का अवकाश नहीं देते, मात्र उतना हाशिया देते हैं, जहाँ तक कि वह तत्त्वज्ञान में उपकारक होता है, उसके लिए उनका आग्रह नहीं होता। शुद्ध, विशाल, व्यापक दृष्टि सम्पन्न ये आध्यात्मिक साधु बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। इनके दर्शन से वस्तुतः मैं बहुत ही कृतकृत्य हुआ हूँ।

आचार्य विद्यासागर विलक्षण काव्यकार होने के साथ विलक्षण शब्दकार भी हैं। उनकी शब्दशास्त्रीय प्रतिभा निरुक्तिकार 'यास्क' की परम्परा का स्मरण दिलाती है। वर्ण-विपर्यय और सभंग-अभंग श्लेष द्वारा शब्दों की चमत्कार पूर्ण अर्थ योजना में आचार्य श्री की द्वितीयता नहीं। संस्कृत के ज्ञानोत्कर्ष की दृष्टि से उनकी मेधा एवं धारणाशक्ति विस्मयाभिभूत करनेवाली है। साहित्य और दर्शन का उनमें समाहार हुआ है। उनकी भक्ति और नीतिसमन्वित काव्यप्रतिभा ने संस्कृत साहित्य को मानो शंकराचार्य की द्वितीयता से विमंडित किया है। उनकी काव्यकृतियाँ कोश का अनुकरण नहीं करतीं, वरन् कोशकारों के लिए नई शब्दावली प्रस्तुत करती हैं। सचमुच वे अतुल और विस्मयकारी शब्द भंडार के अधिस्वामी है।

डॉ. रंजनसूरि देव, पटना (बिहार)

आचार्य श्री विद्यासागर, दिगम्बर जैन परम्परा के ख्यातिलब्ध आचार्य हैं। अल्पवय में ही आप में जो सारस्वत वैभव प्रकट हुआ है, वह आपकी उग्र तपस्या का परिणाम है। आपके व्यक्तित्व में तपस्या और काव्य का ऐसा अद्भुत समन्वय है कि आपकी तपस्या भी काव्यात्मक हो उठी है और काव्य भी तपस्यात्मक।

डॉ. आशा मलैया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी का सामाजिक मूल्यांकन आवश्यक

● श्रीमती रंजना पटोरिया

नारी ज्ञान, शक्ति और ऐश्वर्य इन तीनों रूपों की समन्वित कृति है। नारी सृष्टि, समाज और मानव जीवन तीनों की आधारशिला है। वह न केवल जननी है, अपितु शिक्षक, प्रशिक्षक, निर्देशक, पोषक व रक्षक भी है। पाश्चात्य संस्कृति में नारी भोग्या है, किन्तु भारतीय संस्कृति में नारी को माता के रूप में उपस्थित कर इस रहस्य को उद्घाटित किया गया है कि वह विलासिता की सामग्री न होकर वन्दनीय व पूजनीय है।

एक हजार वर्षों का इतिहास सँजोए एक युग बीत गया, अब आया 21वीं सदी का युग, सारी संभावनाओं से भरा हुआ और यही समय आकलन करने का भी है, विशेषकर 'नारी की स्थिति का'। अब संदर्भ विश्व की नारी हो या भारत की। नारी सबल हुई या दुर्बल। उसका सम्मान हुआ या मान घटा। आत्मनिर्भर हुई या उसकी निर्भरता में वृद्धि हुई। नारी के व्यक्तित्व में निखार आया या और भी दबाई-कुचली गई। उपलब्धियों के कीर्तिमान हासिल किये या घर की चारदिवारी में चूल्हे-चौके तक सिमट कर रह गई। जब बात भारत की होगी तो ईसा की सहस्राब्दी तक नहीं, वह तो युगाब्दियों तक चलेगी।

सृष्टि की निर्मात्री, धात्री 'माँ' की श्रेष्ठता की भारतीय मूल्यों में सहज स्वीकृति थी, किन्तु जब-जब इसकी उपेक्षा हुई तब-तब अन्याय हुआ। समाज में विकृति आई और देश पतन के गर्त में गया। आज न तो समाज में शांति है, और न ही समृद्धि, किसी भी राष्ट्र की शांति, सुख-समृद्धि के लिये आवश्यक है कि उस राष्ट्र की नारी का सामाजिक सम्मान की दृष्टि से मूल्यांकन हो।

अहिल्या का शिलावत् जीवन जीना, सीता के सतीत्व की अग्नि परीक्षा, व परित्याग स्वाभाविक नहीं अस्वाभाविक व असामान्य घटनाएँ थीं जिनकी जनमानस में कभी स्वीकृति नहीं हुई। अन्याय के उदाहरण पहले भी थे, आज भी हैं, आगे भी रहेंगे। किन्तु न ही यह भारतीय अवधारणा है और न ही आदर्श।

नारी के हाथ में राष्ट्र के विकास की कुञ्जी है। विश्वशांति स्थापना की वही एक धुरी है। इस कुञ्जी को कायम रखने व इक्कीसवीं सदी की शांति व समृद्धि के लिये नारी के सम्मान व स्वाभिमान की रक्षा अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव है जब नारी स्वयं का सर्वांगीण शिक्षा द्वारा विकास करे वह भी मानसिक व बौद्धिक दोनों तरह से। और यह शिक्षा तभी सार्थक होगी जब मेधा व प्रतिभा का सही दिशा में समुचित उपयोग किया जावे। वर्षों की दासता के कारण नारी अज्ञान के अंधेरे में, कुरीतियों, अंधविश्वासों में जकड़ गई है। और वंचित है, उस सम्मान से जिसकी वह अधिकारिणी है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में तो यहाँ तक लिखा है कि 'कहीं धर्म की व्याख्या करनी है तो शास्त्रों में देखें। शास्त्रों में न मिले तो संतों से पूछें। संतों से न मिले तो माता से पूछें। माँ ही धर्म की अधिकृत व्याख्याता है।' यहाँ धर्म का अर्थ कर्तव्य से है, और निश्चय ही संतान का कल्याण चाहने वाली माता उसे करणीय और अकरणीय का सही ज्ञान देती है। परिवार समाज व विश्वशांति की कामना करती है।

भगवान महावीर की दृष्टि में नारी

युगपुरुष महावीर की दृष्टि में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। महावीर के द्वारा नारी को खोया सम्मान दिलाना एक क्रांतिकारी कदम था। उन्होंने समझाया, पुरुष की तरह स्त्री को भी विकास के लिये पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, नारी को पुरुष से हेय समझना, अज्ञान, अधर्म व अतार्किक है। जैनागमों में पत्नी को 'धम्म-सहाया' अर्थात् धर्म की सहायिका माना है।

नारी शक्ति, ज्ञान और ऐश्वर्य इन तीनों रूपों की समन्वित कृति है, नारी सृष्टि, समाज और मानव जीवन तीनों की आधारशिला है। वह न केवल जननी है अपितु शिक्षक, प्रशिक्षक, निर्देशक, पोषक व रक्षक भी है। पाश्चात्य संस्कृति में नारी भोग्या है किन्तु भारतीय संस्कृति में नारी को माता के रूप में उपस्थित कर इस रहस्य को उद्घाटित किया गया है कि वह विलासिता की सामग्री न होकर वंदनीय व पूजनीय है।

आज 21वीं सदी के आरंभ में नारी-जागरण की बातें प्रायः सुनने मिलती हैं। यह ठीक भी है क्योंकि समाज व राष्ट्र की उन्नति व अवनति दोनों ही नारी पर निर्भर है। नारी जागरण हेतु 'महिला सम्मेलन' कर लेना या कानून बना देना ही पर्याप्त नहीं है, आवश्यकता है मानसिकता बदलने की। इस हेतु महिलाएँ शिक्षा भी प्राप्त करने लगी हैं किन्तु शिक्षा का जो सकारात्मक प्रभाव उन पर पड़ना चाहिए, जो कर्त्तव्यपरायणता आनी चाहिए, उसमें कमी है। इस हेतु उन्हें उत्साहित करना है। वे अपनी शक्ति पहचानें। धैर्य, ममता, त्याग और शौर्य की प्रतिमूर्ति बनें। नागरिक के रूप में राष्ट्र निर्माण के कार्य में जुट जावें। महिलाओं पर जितना अपने जीवन का दायित्व है, उतना ही परिवार, समाज और राष्ट्र का भी है। अतः राष्ट्र की समस्याओं का चिंतन करें व समाधान में भागीदारी निभावें। हमारी अस्मिता व सम्मान की सुरक्षा इसी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। हमें विश्वास है कि त्याग, बलिदान व अपने नैसर्गिक सुख का परित्याग कर समाज को अभ्युदय और निःश्रेयस की ओर ले जाने का आदर्श स्थापित करेगी, नारी ही।

इन सब गुणों के बावजूद आज पाश्चात्य सभ्यता और पारम्परिक मूल्यों का टकराव भी हो रहा है। जिसमें भारत में हर साल 20 लाख मादा भ्रूणों की हत्या हो रही है। लिंगभेद पर आधारित हमारे समाज में पुरुषों का वर्चस्व है, इसलिये महिलाओं के खिलाफ किया गया कोई काम उसके पैदा होने के बाद से नहीं, बल्कि उसके पैदा होने के अंदेशे से ही शुरू हो जाता है। बीमार मानसिकता के लोगों को यह समझना होगा कि सृष्टि स्त्री व पुरुष दोनों के सहयोग से चलती है। अगर हम एक का अस्तित्व ही खत्म कर देंगे तो इस सृष्टि को आगे कैसे बढ़ाएँगे, इस तरह तो अनजाने में ही हम सृष्टि के विकास को रोक रहे हैं। वक्त रहते ही स्वयं को सुधारना होगा वरना दूसरों (औरत) को मिटाने के चक्कर में हम स्वयं ही मिट जाएँगे। यदि समाज इस समस्या पर यूँ ही आँखे मूँदे रहा तो आने वाले समय में समाज का अस्तित्व या तो रहेगा ही नहीं, या गंभीर चिंतनीय विषय होगा। मादा भ्रूण हत्या द्वारा समाज न सिर्फ स्त्रीत्व का अपमान कर रहा है, बल्कि एक निर्दोष को अपने अधिकार से वंचित कर रहा है।

भगवान महावीर ने घोषणा की थी कि विश्व के समस्त प्राणियों में एक सशक्त स्वभाव है - जीवन की आकांक्षा। इसलिये किसी को कष्ट न पहुँचाओ। जियो और जीने दो का नारा भी उन्हीं ने दियां था। आज जब देश-विदेश में महावीर स्वामी का 2600 वाँ जन्मोत्सव मनाया जा रहा है, तब यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि महावीर स्वामी के उन प्रवचनों का विशेष रूप से स्मरण हो जो पच्चीस सदियों पहले नारी जाति को पुरुष के समकक्ष खड़ा करने के प्रयास में उनके मुख से उच्चरित हुए थे।

द्वारा- सन्दीप पटोरिया एसोसिएट्स,
सिविल लाइन्स,
कटनी-483501 (म.प्र.)

पाठ्य पुस्तक से आपत्तिजनक पद्य निष्कासित

श्री महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, अजमेर द्वारा बी.ए. भाग एक में हिन्दी साहित्य के अध्यापन के लिय स्वीकृत पाठ्य पुस्तक राजस्थान प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित एवं डॉ. श्याम सुंदर दीक्षित द्वारा संपादित पुस्तक प्राचीन काव्य माधुरी के अध्याय 6 पृष्ठ सं. 50 पर छंद सं. 11 कविसुंदरदास का निम्न छंद है :-

'तो अरहंत धर्मों भारी मर्मो, केश उपरमीं बेशर्मी।
जो भोजन नर्मी पावै सुरभी, मन मधुकरिणी अति डर्मी।
अरु दृष्टि सुचर्मी अंतरि गरमी, नाहीं भामी गह ठेला।
दादू का चेला मर्म पछेला, सुंदर न्यारा हवै षेला॥'

उक्त पद्य में साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित जैन साधुओं की चर्या के बारे में सर्वथा निराधार असत्य किंतु अत्यंत निन्दात्मक टिप्पणी की गई है।

उक्त विषय की जानकारी प्राप्त होते ही अजमेर जिले के दि. जैन समाज में तीव्र रोष व्याप्त हुआ और श्री माणकचंद जैन एडवोकेट, अजमेर, श्री मूलचंद लुहाड़िया एवं श्री अशोक कुमार पाटनी, किशनगढ़ की ओर से विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय को विरोध पत्र भेजे गए। अजमेर जिले की भगवान महावीर 2600वाँ जन्म जयंती महोत्सव समिति की अजमेर में बैठक आयोजित हुई जिसमें उक्त पद्य को पाठ्य पुस्तक में से निष्कासित कराने के लिए वृहत् स्तर पर आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया। यह भी निर्णय लिया गया कि इससे पूर्व एक बार दि. जैन समाज का प्रतिनिधि मंडल वि.वि. के उपकुलपति जी से इस आपत्तिजनक पद्य को पाठ्यपुस्तक से निकाल देने के लिये निवेदन करे एवं ऐसा नहीं किए जाने पर तीव्र आन्दोलन प्रारंभ करने की चेतावनी दे दी जाए। महोत्सव समिति के मंत्री श्री कपूरचंद सेठी ने उपकुलपति जी को उक्त आशय का पत्र लिखा।

प्रसन्नता का विषय है कि विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय ने दि. जैन समाज के विरोध के औचित्य को समझकर तुरंत प्रभाव से यह आपत्तिजनक पद्य पाठ्यपुस्तक से निष्कासित किए जाने के निर्देश प्रदान कर दिए। उपकुलपति महोदय के इस उचित एवं प्रशंसनीय निर्णय के लिये दि.जैन.समाज अपना आभार व्यक्त करता है।

● *मूलचंद लुहाड़िया*

आध्यात्मिक परितृप्ति खड़-खड़ काया ऐसी

जैसे आग में विदग्ध स्वर्णलता। अभय की जीवंत प्रतिमूर्ति। रोम-रोम में आज भी जहाँ तहाँ बालक विद्याधर सा ही भोलापन, वैसी ही निरीह निष्काम मुद्रा। सात सुरों के लयपुरुष, संगीत में गहरी रुचि, कवि भाषाविद्, दुर्धर्ष साधक, तेजोमय तपस्वी। बोलने में मंत्र-मुग्धता, आचरण में स्पष्टता, कहीं कोई प्रचार-प्रसार की कामना नहीं। सर्वत्र सुख, शांति, महान मनीषी और तेजस्वी, तपोधन, जीवंत तीर्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर आचार्य।

● *डॉ. नेमीचंद्र जैन,*
इंदौर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालवार्ता

रात्रिभोजन-त्यागी श्रृगाल

प्रस्तुति : श्रीमती चमेलीदेवी जैन

बात बहुत पुरानी है। एक नगर में एक दिगम्बर मुनि आये थे। वे नगर के बाहर एक बगीचे में रुके हुए थे। सागरसेन उनका नाम था। वे महान् तपस्वी थे। उनके तप का महात्म्य सुनकर सभी नगरवासी उनके दर्शन करने के लिये लालायित थे। राजा के पास समाचार पहुँचने पर वह भी उनके दर्शन करने को उत्कण्ठित हुआ। उसने नगर में ढिंढोरा पिटवाया। सभी नगरवासी स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। राजा सभी को साथ लेकर गाजे-बाजे और धूम-धाम से मुनि के दर्शन करने गया। दर्शन कर सभी प्रसन्न हुए। मुनि से सभी ने धर्मोपदेश सुना और अपनी शक्ति के अनुसार व्रत धारण किये। अन्त में वन्दना कर सभी वहाँ से लौट आये।

नगर के बाहर एक शृगाल रहता था। उसने ऐसी धूम-धाम, गाजे-बाजे और ऐसा समूह किसी के मरने पर उसे श्मसान ले जाते हुए ही देखा था। अतः उसे आज परम हर्ष था। वह ऐसा खुश था जैसे उसे चिन्तामणि रत्न मिल गया हो। वह खुशी से फूला नहीं समा रहा था। उसका अनुमान था कि आज नगर का कोई बड़ा आदमी मरा है। नगर के लोग उसे ही नगर के बाहर छोड़ने आये थे। निश्चित ही वे मृतक को नगर के बाहर छोड़ गये होंगे।

शृगाल खुशी-खुशी छिपता-छिपता उस ओर दौड़ा जिस ओर से उसे बाजों की आवाज आई। उसने यहाँ आकर सारा प्रदेश छान मारा। न तो कोई मृतक उसे भूमि के भीतर गड़ा हुआ मिला और न कोई श्मसान में जलते हुए दिखा। वह विचारों में खो गया। सोचने लगा- बाजे क्यों बजाये गये? और इतना बड़ा समूह इस ओर क्यों आया था? उसने पुनः खोज की किन्तु उसे कोई मृतक नहीं मिला।

बगीचे में बैठे सागरसेन मुनि राज मौनपूर्वक शृगाल को इधर-उधर भटकते देख रहे थे। वे दयार्द्र हो गये। दया से उनका हृदय भर गया। वे अवधिज्ञानी थे। उन्होंने अवधि-ज्ञान से जान लिया था कि शृगाल भव्य है। यह व्रत धारण कर मोक्ष प्राप्त करेगा। उसे सुपात्र जानकर मुनि ने करुणापूर्वक अपना मौन भंग किया और शृगाल को सम्बोधित कर कहा -

हे शृगाल! इन्द्रियों के विषय बुरे हैं। वे भोगते समय ही अच्छे प्रतीत होते हैं। तू रसना के आधीन होकर इधर-उधर क्यों भटक रहा है? अरे! यह रसना यहीं नहीं भटका रही है, संसार में अनेक जगह भटकावेगी। मछली इस रसना के चक्कर में आकर अपने प्राण संकट में डाल देती है और तड़फ-तड़फकर मरती है।

हे शृगाल! क्या नहीं सुना? जो जैसा करता है उसका फल वह वैसा ही पाता है। काँटे देने वाले बबूल से क्या कभी आम का फल मिला है? तूने पूर्वजन्म में जो पाप किये थे उन्हीं का परिणाम है जो कि तुम शृगाल हुए हो। शृगाल मुनिराज को एक टक निहारता रहा। उसने मुनि को ज्ञानी समझकर मन ही मन प्रणाम किया। सोचने लगा- मुनि का इसमें क्या स्वार्थ है जो कि वे ऐसा कह रहे हैं। हितकारी बात सभी को अच्छी लगती है। उसे भी मुनिराज का उपदेश हितकर प्रतीत हुआ। आगे मुनिराज ने कहा- शृगाल! सब दुष्कर्म छोड़कर व्रत धारण करो। इसी में जीवन का कल्याण है। रात्रि होने पर भोजन करना छोड़ दो। जो कुछ भी खाना-पीना हो दिन ही में खा-पी लेने में सार है।

शृगाल चुपचाप सुनता रहा। उसे मुनिराज के हितकारी वचन अच्छे लगे। वह सोचने लगा- मुनिराज ठीक ही तो कह रहे हैं। उसने दुष्प्रवृत्तियों से मुख मोड़ लिया और जोड़ लिया अपने को नियमों से। निश्चय कर लिया उसने रात से नहीं खाने-पीने का।

अच्छे कार्य में विघ्न आते ही हैं। विघ्नों में स्थिर बने रहने में ही सफलता प्राप्त होती है। शृगाल ने एक दिन रूखा-सूखा भोजन किया। रूखा-सूखा खाने से उसे पानी पीने की इच्छा हुई। वह एक बावड़ी में पानी पीने गया। बावड़ी गहरी थी। सूर्य की किरणें बावड़ी के पानी तक नहीं पहुँच पा रही थीं बावड़ी में दिन रहते हुए भी रात्रि जैसा अंधेरा छाया था। शृगाल जैसे ही बावड़ी में पानी पीने पानी के पास गया और अपना मुँह पानी के पास ले गया कि अंधेरा दिखाई दिया। अंधेरा देखकर उसे रात होने का प्रतिभास हुआ।उसे मुनिराज के निकट लिए अपने व्रत की याद आई। फलस्वरूप वह बिना पानी पिये ही बावड़ी के बाहर आ गया।

बाहर आने पर उसे धूप दिखाई दी। उसे लगा कि दिन शेष है। बढ़ती हुई प्यास से आकुलित होकर वह झटपट फिर बावड़ी के भीतर गया। जैसे ही वह बावड़ी में पानी के पास पहुँचा कि फिर अंधेरा दिखाई दिया और नियम का आमरणान्त निर्वाह करने की दृष्टि से वह पुनः बिना पानी पिये बावड़ी से बहर आ गया। बाहर आने पर फिर से उसे दिन दिखाई दिया। वह पानी पीने बावड़ी में गया और फिर बिना पानी पिये ही वापिस आया। यह करते-करते उसे रात हो गई और वह पानी नहीं पी सका। परिणामस्वरूप प्यास से उसके प्राण निकल गये। आमरणान्त भावपूर्वक व्रत के पालन करने से मरकर वह मगधदेश में सुप्रतिष्ठ नगर के सेठ सागरदत्त और सेठानी धनमित्रा का प्रीतिंकर नामक पुत्र हुआ। व्रत के प्रभाव से मुक्त हो गया वह तिर्यंच योनि से।

महापुराण कथाकुञ्ज
(डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन') से साभार

शिखर का स्पर्श कैसे?

● *आचार्य श्री विद्यासागर*

पर्वत की तलहटी से भी
हम देखते हैं कि
उत्तुंग शिखर का दर्शन होता है
परन्तु
चरणों के प्रयोग के बिना
शिखर का स्पर्श
सम्भव नहीं

'मूकमाटी'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यप्रदेश शासन द्वारा जैन समुदाय को अल्पसंख्यक दर्जा दिये जाने की अधिसूचना जारी

● सुरेश जैन, आई.ए.एस.

श्री सुरेश जैन भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी एवं कुशल विधिवेत्ता हैं। मध्यप्रदेश शासन द्वारा जैन समुदाय को अल्पसंख्यक दर्जा देने की अधिसूचना जारी करने के तुरन्त बाद श्री जैन ने विभिन्न शासकीय कार्यालयों में जाकर अल्पसंख्यक आयोग तथा अल्पसंख्यक वर्ग को प्राप्त होने वाली सुविधाओं से सम्बद्ध विभिन्न जानकारियाँ उपलब्ध कीं और परिश्रम पूर्वक यह आलेख लिखा है। जैन समुदाय उन सुविधाओं से परिचित होकर उनका लाभ उठा सकता है।

दिनांक 23 फरवरी 2001 को कुण्डलपुर में आचार्य श्री विद्यासागर जी के समक्ष मध्यप्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह जी ने प्रदेश के जैन समुदाय को अल्पसंख्यक दर्जा देने की घोषणा की थी। उसे कार्यरूप में परिणित करते हुए मध्यप्रदेश शासन द्वारा दिनांक 29 मई 2001 को उक्त आशय की अधिसूचना जारी कर दी गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 में प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 29 द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय के नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति का संरक्षण करें। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक समुदाय को शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन हेतु विशेष अधिकार दिये गये हैं। प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय अपने धर्म एवं भाषा के आधार पर अपनी रुचि के अनुसार शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना एवं उनका संचालन करने हेतु सक्षम है। संविधान ने यह भी प्रावधान किया है कि भारत सरकार तथा राज्य सरकार द्वारा अन्य संस्थाओं की भाँति अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं को अनुदान एवं सहायता दी जाय।

केन्द्रीय सरकार ने अपनी अधिसूचना क्रमांक 816 (अ) दिनांक 23 अक्टूबर, 1993 के द्वारा जो भारत के राजपत्र भाग 2 खण्ड 3 के उपखण्ड (ii) में प्रकाशित की गई है, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 (क्र. 19 सन् 92) की धारा के खण्ड 2 (ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त अधिसूचना के प्रयोजन के लिये मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध और पारसी समुदायों को अल्पसंख्यक समुदायों के रूप में अधिसूचित किया है। इस अधिसूचना में जैन समाज को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया था।

मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम

मध्यप्रदेश राज्य में अल्पसंख्यक समुदायों के कल्याण हेतु मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996 (क्र. 15 सन् 1996) प्रभावशील है। इस अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यक समुदाय घोषित करने की शक्तियाँ प्राप्त करने के लिये राज्य सरकार ने मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग (संशोधन) अधिनियम, 2001 (क्र. 11 सन् 2001) के द्वारा जो मध्यप्रदेश राजपत्र असाधारण क्र. 252 दिनांक 17 अप्रैल 2001 में प्रकाशित किया गया है मूल अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ग) के स्थान पर निम्नांकित नवीन खण्ड स्थापित किया गया है :-

इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये 'अल्पसंख्यक' से अभिप्रेत है :-

(एक) केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 (1992 का सं. 19) के प्रयोजन के लिये इस रूप में अधिसूचित किया गया समुदाय।

(दो) राज्य सरकार द्वारा इस रूप में अधिसूचित किया गया समुदाय।

जैन समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में घोषित करने की अधिसूचना

उपरिलिखित शक्तियों का प्रयोग करते हुए मध्यप्रदेश सरकार ने मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996 (क्र. 15 सन् 1996) के अंतर्गत प्रसारित अधिसूचना क्र. एफ 11-18/98/54-2 दिनांक 29 मई 2001 के द्वारा मध्यप्रदेश के मूल निवासी जैन समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया है।

अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना

मध्यप्रदेश सरकार ने उपरिलिखित अधिनियम के अंतर्गत प्रसारित अपनी अधिसूचना क्रमांक 1102/1985/54-2/96 दिनांक 23 अक्टूबर, 1996 के द्वारा अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की है। आयोग की स्थापना के पीछे राज्य शासन की यह मंशा है कि धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक समुदायों के हितोंकी इस आयोग द्वारा सुरक्षा की जावे।

आयोग के कर्त्तव्य

इस आयोग को इस अधिनियम की धारा 9 (1) के द्वारा निम्नांकित कर्त्तव्य सौंपे गये हैं :-

(क) राज्य के अधीन अल्पसंख्यकों के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना,

(ख) संविधान में और संसद तथा राज्य विधान मंडल द्वारा अधिनियमित विधियों में उपबंधित रक्षोपायों के कार्य को मानीटर करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) राज्य सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की संरक्षा के लिये रक्षोपायों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिये सिफारिशें करना,

(घ) अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के बारे में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जाँच पड़ताल करने और ऐसे मामलों को राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना,

(ङ) अल्पसंख्यकों के विरुद्ध किसी विभेद के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन करवाना और उनको दूर करने के लिये अध्युपायों की सिफारिश करना,

(च) अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास से संबंधित विषयों का अध्ययन, अनुसंधान और विश्लेषण करना,

(छ) किसी अल्पसंख्यक समुदाय के संबंध में ऐसे समुचित अध्युपाय का सुझाव देना जो राज्य सरकार द्वारा किये जाने चाहिए,

(ज) अल्पसंख्यकों से संबंधित किसी विषय पर और विशिष्टतया उन कठिनाइयों पर जिनका उन्हें सामना करना पड़ता है राज्य सरकार को नियतकालिक या विशेष रिपोर्ट देना और

(झ) कोई अन्य विषय जो राज्य सरकार द्वारा उसे निर्दिष्ट किया जाय, परन्तु यदि आयोग द्वारा की गई कोई सिफारिश राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा मध्यप्रदेश राज्य से संबंधित किसी मामले पर की गई सिफारिश के विरुद्ध है तो उस दशा में राज्य आयोग द्वारा की गई सिफारिश अप्रभावी होगी।

आयोग को जाँच हेतु प्रदत्त अधिकार

आयोग द्वारा संविधान में और संसद तथा राज्य विधान मंडल द्वारा अधिनियमित विधियों में उपबंधित रक्षोपायों के कार्य को मानीटर करने एवं अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के बारे में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जाँच पड़ताल करने और ऐसे मामलों को राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करने संबंधी कृत्यों का पालन करने के लिये आयोग को व्यवहार न्यायालय की निम्नांकित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं :-

(क) राज्य के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना,

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना,

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना,

(घ) किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करना,

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिये कमीशन निकालना और

(च) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए।

आयोग के अध्यक्ष

राज्य शासन के पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक कल्याण विभाग ने अपने आदेश क्र. 1102/985/54-2/96 दिनांक 23.10.96 द्वारा मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग का गठन 23 अक्टूबर 1996 से किया है और इसके अध्यक्ष के पद पर श्री इब्राहीम कुरैशी को नियुक्त किया है।

आयोग को आवंटित राशि

मध्यप्रदेश सरकार ने अल्पसंख्यक कल्याण विभाग से संबंधित व्यय के लिये वर्ष 2001-2002 में मांग संख्या -63 और लेखा शीर्ष 2225 के अंतर्गत बजट की पुस्तिका क्र. 37 में रु. 245 लाख का प्रावधान किया है। इस राशि में से अल्पसंख्यक कल्याण संचालनालय, अल्प संख्यक आयोग एवं वक्फ कमिश्नर के कार्यालय, उर्दू अकादमी को अनुदान, मध्यप्रदेश वक्फ बोर्ड को सहायक अनुदान, वक्फ न्यायाधिकरण मसजिद कमेटी को सहायक अनुदान, मध्यप्रदेश हज कमेटी को सहायक अनुदान तथा चर्च एवं दरगाह को अनुदान आदि शीर्षों पर व्यय किया जाता है।

अल्पसंख्यक समुदाय को वित्तीय सहयोग

मध्यप्रदेश पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास निगम भोपाल द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों को स्वरोजगार स्थापित करने की दृष्टि से 95 प्रतिशत ऋण सस्ती ब्याज दरों पर प्रदान किया जाता है। हितग्राही को अपनी ओर से 5 प्रतिशत अंश जमा करना होता है। वित्तीय सहयोग निगम द्वारा स्वीकृत निम्नांकित योजनाओं को प्रदान किया जाता है-

(1) डेयरी
(2) बेकरी
(3) होटल/ढाबा
(4) पान दुकान
(5) रेडीमेड गारमेंट
(6) किराना दुकान
(7) आटो स्पेयर पार्ट्स
(8) आटो रिपेयर
(9) विद्युत मोटर रिवाइंडिंग
(10) प्रिंटिंग प्रेस एवं
(11) कार वर्कशाप आदि

इन योजनाओं का लाभ अब जैन समुदाय भी उठा सकता है।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम द्वारा वर्ष 1999-2000 हेतु मध्यप्रदेश के निगम को रु. 204 लाख का प्रावधान किया गया था।

जिले स्तर पर इस योजना का कार्यान्वयन महाप्रबंधक, जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र द्वारा किया जाता है। प्रायः प्रतिवर्ष मई माह में आवेदन पत्र प्राप्त किये जाते हैं। इच्छुक व्यक्ति महाप्रबंधक, जिला एवं व्यापार उद्योग केन्द्र से सम्पर्क करें।

अल्पसंख्यक समुदाय के उन हितग्राहियों को जिनकी पारिवारिक वार्षिक आय गरीबी रेखा के नीचे शहरी क्षेत्रों में 21,206 तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 15,976 एवं दोहरी गरीबी रेखा के नीचे शहरी क्षेत्रों में रु. 42,412 तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 31,952 से कम हो एवं उनकी आयु 18 वर्ष या उससे अधिक हो, उन्हें ऋण लेने की पात्रता होगी।

राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम द्वारा अशासकीय संस्थाओं के माध्यम से भी प्रति व्यक्ति रु. 10,000/- तक ऋण दिया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैक्षणिक लाभ

अल्प संख्यक की मान्यता मिलने से जैन समाज को मुख्य लाभ यह है कि जैन समाज द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन का उन्हें पूर्ण अधिकार होगा। परिणमतः हम इन संस्थाओं में अपने समाज के विद्यार्थियों को प्रवेश दे सकेंगे तथा अपने विवेक के आधार पर प्राचार्य/प्रधानाचार्य को नियुक्त कर सकेंगे। अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित एवं संचालित तथा शासन से सहायता प्राप्त संस्थाओं में अल्प संख्यक समुदाय के 50 प्रतिशत छात्रों को प्रवेश दिया जा सकेगा। परिणामतः इन संस्थाओं का अल्पसंख्यक चरित्र बना रह सकेगा। प्रमुख शर्त यह है कि इन संस्थाओं द्वारा संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित मानदण्डों की पूर्ति की जाए। इन संस्थाओं में अन्य समुदाय के 50 प्रतिशत छात्रों को योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जा सकेगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्य शासन के उच्च शिक्षा विभाग ने अपने ज्ञापन क्र. डी-2839/1152/97/सी-3/38 दिनांक 29.10.97 के द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित अशासकीय शैक्षणिक संस्थाओं की निम्नांकित व्याख्या की है-

"अल्पसंख्यक समुदायों की अशासकीय शैक्षणिक संस्थाओं से तात्पर्य ऐसी संस्थाओं से है जिनका संचालन/प्रबंधन मुख्यतः घोषित अल्पसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधियों द्वारा कराया जाता हो और जो मुख्यतः अल्पसंख्यक समुदायों में शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये चलाई जा रही हों।"

जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जैन समाज के नेतृत्व से बलवती अपेक्षा है कि अब मध्यप्रदेश में उच्च शिक्षा के ऐसे उत्कृष्टतम केन्द्र स्थापित किये जायँ जहाँ जैन समुदाय एवं प्रदेश एवं समीपस्थ प्रदेशों के सभी समुदायों के प्रतिभाशाली युवक/युवतियाँ चिकित्सा, प्रबंध, व्यवसाय, अभियांत्रिकी, विधि एवं तकनीकी क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा प्राप्त कर अपना चतुर्मुखी विकास कर सकें और सम्पूर्ण विश्व की सेवा कर सकें।

30, निशात कालोनी,
भोपाल-462003 (म.प्र)

'कथा तीर्थंकरों की' का लोकार्पण

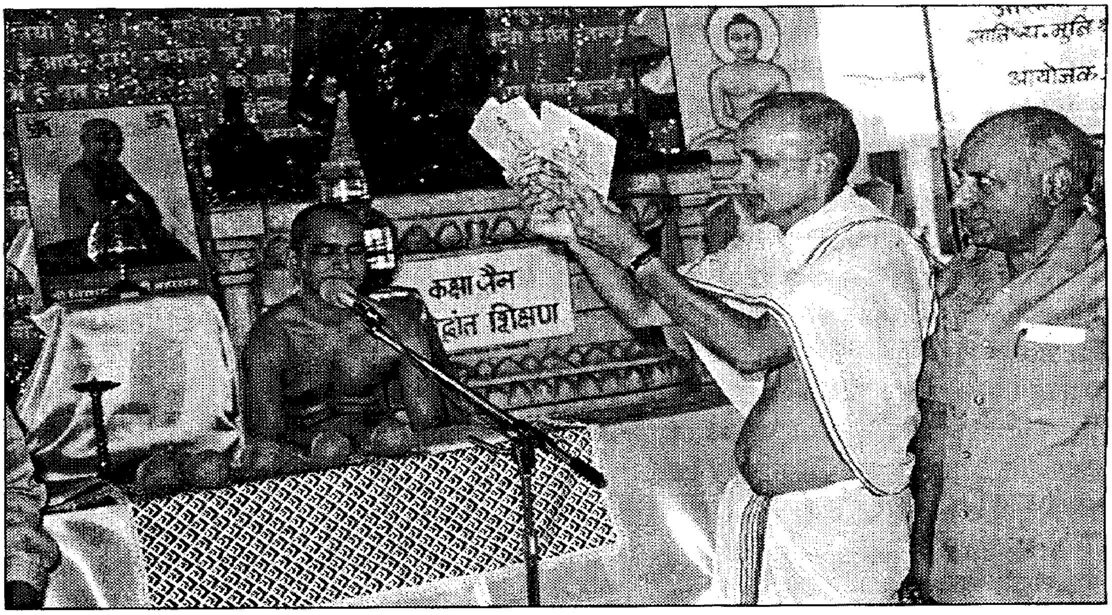

आचार्य विद्यासागर जी के प्रभावक शिष्य मुनि श्री समतासागर जी द्वारा लिखित सरल एवं सुबोध पुस्तक 'कथा तीर्थंकरों की' सागर में 9 जून, 2001 को पंडित रतनलाल जी बैनाड़ा, आगरा एवं सुरेश जैन, आई.ए.एस. भोपाल द्वारा लोकार्पित की गई। इस पुस्तक में चौबीस तीर्थंकरों के जीवनचरित्र का संक्षिप्त वर्णन है। मुनिसमता सागर जी ने इस लघु पुस्तिका के माध्यम से आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण एवं पद्मपुराण आदि जैन पुराणों का सुस्वादु नवनीत उपलब्ध कराया है।

समता सागर जी द्वारा लिखित 5 काव्य संग्रह एवं भक्तामर आदि 9 रचनाओं का प्रश्नोत्तरों के साथ दोहानुवाद पूर्व में प्रकाशित हो चुका है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'सागर बूँद समाय', 'सर्वोदय सार', 'तेरा सो एक', 'स्तुतिनिकुंज', एवं 'श्रावकाचार कथाकुंज' सम्पूर्ण जैन समाज के घर-घर में पढ़े जा रहे हैं। 'दशलक्षण सारसंचय', तथा 'पंचकल्याणक प्रतिष्ठा', भी उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। उनके प्रवचनसंग्रह 'प्रवचन पथ' 'हरियाली हिरदय बसी' 'चातुर्मास के चार चरण' 'पर्युषण के दस दिन' एवं 'अनुप्रेक्षा प्रवचन' प्रत्येक श्रावक के स्वाध्याय कक्ष के महत्त्वपूर्ण रत्न हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोदय ज्ञानसंस्कार शिक्षण शिविर सम्पन्न

कुंथलगिरि (महाराष्ट्र) भगवान कुलभूषण एवं देशभूषण के परम पावन निर्वाण क्षेत्र कुन्थलगिरि पर प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्री सन्मति सेवा दल मध्यवर्ती समिति द्वारा सर्वोदय ज्ञान संस्कार प्रशिक्षण शिविर का आयोजन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के तत्त्वावधान में किया गया। इस वर्ष लगभग 200 शिक्षार्थियों ने शिविर में भाग लिया। दिनांक 4.5.2001 को शिविर का उद्घाटन दीप प्रज्ज्वलन करके श्री रतनलाल जी बैनाड़ा (अधिष्ठाता- श्रमण संस्कृति संस्थान, साँगानेर) तथा मध्यवर्ती समिति के अध्यक्ष श्री जीवन दादा पाटिल द्वारा किया गया। प्रशिक्षण शिविर में अधिकांश शिक्षार्थी डॉक्टर, प्रोफेसर आदि होते थे। प्रतिदिन सुबह दोपहर और शाम 2-2 घंटे के तीन शिक्षणसत्र लगते थे जिनमें जैन धर्म शिक्षा-भाग-1,2, छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र और सर्वार्थसिद्धि का प्रशिक्षण दिया जाता था। सर्वार्थसिद्धि का अध्यापन रतनलाल जी बैनाड़ा करते थे और रात्रि में भी सभी शिक्षार्थियों को पौन घंटे रत्नकरण्डक श्रावकार पढ़ाते थे। तदुपरान्त पौन घंटे तक शंका समाधान होता था। तत्त्वार्थसूत्र का शिक्षण श्रीमती पुष्पा बैनाडा आगरा करती थीं। अन्य शिक्षक श्रीमती रचना जैन, आगरा, श्रीमती पुष्पलता जैन, आगरा, ब्र. अरुण भैया सांगानेर आदि थे। सभी शिक्षार्थी कठिन परिश्रम करते थे।

दिनांक 17 मई को विधिवत् परीक्षा ली गयी और 18 को प्रातःकाल परीक्षा फल की घोषणा एवं पुरस्कार वितरण किया गया। तत्पश्चात् सभी शिक्षार्थी परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनिश्री 108 समाधि सागर जी के दर्शनार्थ गये तथा उनका मंगल आशीर्वाद प्राप्त किया। लगातार 4 वर्षों से प्रशिक्षण शिविर का आयोजन करने का ही प्रतिफल है कि इस वर्ष लगभग 100 प्रशिक्षित विद्वान श्री सन्मति सेवा दल द्वारा महाराष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर पर्यूषण पर्व में प्रवचनार्थ भेजे जायेंगे। सर्वार्थसिद्धि एवं तत्त्वार्थसूत्र की शिक्षा प्राप्त करने वालों ने संकल्प किया है कि वे अपने कस्बों या शहरों में वर्ष में 3-4 शिविर आयोजित करेंगे।

आगरा सेक्टर-7, आवास विकास कालोनी में 12 मई से 19 मई तक एक धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। श्रीमान निरंजन लाल जी बैनाडा, (कुलपित श्री सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर) की अध्यक्षता में इस शिविर का उद्घाटन 12 मई को प्रातः 7.30 बजे श्री दिगम्बर जैन मंदिर, सैक्टर-7 में हुआ। करीब 100 शिक्षार्थियों ने शिविर में भाग लिया। समापन समारोह एवं पुरस्कार वितरण 19 मई को हुआ। श्री दिगम्बर जैन मंदिर के अध्यक्ष श्री सतीश जैन एवं श्री जयन्ती प्रसाद जैन ने मंच पर उपस्थित श्री बैनाड़ा जी, श्री सुनील शास्त्री, श्री ए.के. जैन का माल्यार्पण कर स्वागत किया। शिक्षार्थियों को पुरस्कार वितरण श्री अरुण जैन की ओर से किया गया। अन्त में जैन समाज सेक्टर-7 की ओर से सभी का आभार व्यक्त किया गया।

तारंगा दिनांक 20 मई से 27 मई 2001 तक गुजरात प्रांतीय वेतालीस दशा हूमण दिगम्बर जैन समाज द्वारा आयोजित श्री सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर अत्यंत हर्ष उल्लास के साथ श्री श्रमण संस्कृति संस्थान, साँगानेर के सान्निध्य में तारंगाजी में सम्पन्न हुआ। वेतालीस दशा हूमण समाज द्वारा शृंखलाबद्ध प्रतिवर्ष लगाया जाने वाला यह चौथा शिक्षण शिविर था। पिछले वर्ष वृन्दावन (हिम्मतनगर) में लगभग 350 शिक्षार्थियों ने भाग लिया था जबकि इस वर्ष 500 से भी अधिक विद्यार्थी शामिल हुए।

दिनांक 20 मई को प्रातः 9.00 बजे शिविर का उद्घाटन श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा दक्षिण प्रकोष्ठ के अध्यक्ष माननीय श्री आर.के. जैन मुम्बई द्वारा किया गया। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में दसा हूमण समाज द्वारा एकत्रित विशाल ध्रुव फण्ड की प्रशंसा की और कहा कि इतना ध्रुव फण्ड किसी भी अच्छी संस्था में देखने में नहीं आया। उन्होंने शिक्षण शिविर लगाने की परम्परा को वर्तमान समय में अत्यंत आवश्यक बताते हुए स्वयं भी शिविर में पढ़ने की इच्छा व्यक्त की।

उद्घाटन के समय दीप प्रज्ज्वलन श्री अरविन्द भाई (अध्यक्ष- वेतालीस दशा हूमण समाज) तथा श्री रतनलाल जी बैनाडा के द्वारा जो इस शिविर के कुलपति भी थे, किया गया। तदुपरान्त स्वागत गान के पश्चात सभी शिक्षक, विद्वानों एवं अतिथियों का सम्मान किया गया। इस शिक्षण शिविर का अर्थभार श्री पोपट भाई शाह, जलगाँव द्वारा वहन किया गया। उनकी तरफ से उद्घाटन में उपस्थित लगभग 1500 लोगों के भोजन की व्यवस्था भी की गयी। शिविर में जैन धर्म शिक्षा भाग-1,2, छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र की कक्षाएँ नियमित रूप से दिन में तीन बार चलती थीं, अर्थात् लगभग 5 घंटे प्रतिदिन इन ग्रन्थों का स्वाध्याय होता था। श्री रतनलाल जी बैनाड़ा तत्त्वार्थ सूत्र की कक्षा लेते थे और रात्रि में सभी को सामूहिकरूप से पूजन का अर्थ समझाते थे एवं खुली तत्त्व चर्चा करते थे। साथ में आये हुए अन्य विद्वान पंडित सुनील शास्त्री, आगरा, पं. सौरभ शास्त्री, सौ. अनीता जैन, आगरा पं. सुनील शास्त्र, समनापुर तथा सौ. मनोरमा सौगानी, आगरा, श्री प्रकाशचन्द्र जी पहाड़िया, ब्रह्मचारी अल्पेश जैन, डॉ. शैलेष भाई, ब्र. चेतनजी आदि थे।

दिनांक 26 मई को अपराह्न में परीक्षाएँ सम्पन्न हुई और दिनांक 27 मई को प्रातः प्रमुदित वातावरण में परीक्षाफल घोषित किया गया और पुरस्कार वितरण का कार्य सम्पन्न हुआ।

सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह रही कि सन् 2006 तक होने वाले शिविर का भार वहन करने वालों ने अपने नाम अंकित कराये। तारंगा गुजरात का प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र है एवं भगवान वरदत्त एवं भगवान शायरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने यहाँ से निर्वाण प्राप्त किया है।

सुनील कुमार जैन 'शास्त्री'
962 सेक्टर-7, बोदला आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागर- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से पूज्य मुनिश्री समतासागर जी, मुनि श्री प्रमाण सागर जी एवं ऐलक श्री निश्चय सागर जी के सान्निध्य में सागर (म.प्र.) में 3 से 14 जून 2001 तक सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में 3 साल से 80 साल की उम्र के 3000 से अधिक लोगों ने भाग लिया। जाने-माने विद्वान् पंडित रतनलाल जी बैनाड़ा के नेतृत्व में श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर (म.प्र.) तथा मकरौनिया के जैन मंदिर परिसरों में आयोजित इस शिविर में बालबोध, छहढाला, द्रव्य संग्रह तथा तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ाया गया। इस शिविर के माध्यम से जैनधर्म और जिनवाणी की अभूतपूर्व प्रभावना हुई है।

पंडित रतनलाल जी बैनाड़ा शिविर के कुलपति थे और श्री संतोष कुमार जी पटना वाले आयोजक। प्रतिदिन तीन पारियों में कक्षाएँ लगाई गईं। अध्यापन कार्य 8 घंटे चलता था। तत्त्वार्थसूत्र का अध्यापन पं. रतनलाल जी बैनाड़ा करते थे। तत्त्वार्थ सूत्र की कक्षा में लगभग एक हजार विद्यार्थी शामिल होते थे।

मकरौनिया में 500 से अधिक शिक्षार्थी शिविर में शामिल हुए। यहाँ की शिक्षण व्यवस्था ब्रह्मचारी श्री प्रदीप शास्त्री पीयूष के जिम्मे की गई थी। आगरा के श्री सुनील शास्त्री भी इस शिविर के लिये विशेष रूप से सागर आये थे।

14 जून को शिविर का समापन हुआ इस अवसर पर मेधावी शिक्षणार्थियों को प्रमाणपत्र वितरित किये गये। सागर जैन समाज ने पंडित रतनलाल बैनाड़ा का मुकुट बाँधकर सम्मान किया। इस अवसर पर पूज्य मुनि श्री समतासागर जी महाराज ने कहा कि पंडित जी ने सागर में इतिहास रच दिया है जहाँ एक साथ इतनी संख्या में लोगों को जैन धर्म में शिक्षित किया गया। उन्होंने कहा कि शिक्षण शिविर बहुत लगते हैं लेकिन सागर का शिविर इतिहास बन गया है जो लम्बे समय तक याद किया जायेगा। मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज ने कहा कि पंडितजी ने देशभर में जैन विद्वान तैयार करने का जो बीड़ा उठाया है वह समाज के लिये अनुपम, अनुकरणीय है। उन्होंने कहा कि पंडित जी पर आचार्यश्री की कृपा है इसलिये वे अपने उद्देश्य में अवश्य ही सफल होंगे।

● *रवीन्द्र जैन*

अनावश्यक हिंसा से बचिये

आजकल सौंदर्य प्रसाधनों में चर्बी आदि अशुद्ध पदार्थों का उपयोग बहुत किया जा रहा है। अतः इस अनावश्यक हिंसा से बचने के लिये निम्न वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए।

क्र.	वस्तु	ब्रांड का नाम
1.	साबुन, मार्बल	नीम, चन्द्रिका, गंगा, सिंथोल, मैसूर, सन्दल, मेडीमिक्स, शिकाकाई
2.	टूथपेस्ट	अमर, विकोवज्रदन्ती, बबूल, मिसवाक
3.	टूथ पावडर	प्रामीस, प्योरहन्स, अमर, वैद्यनाथ, विकोवज्रदन्ती, झंडू, भाग्योदय
4.	शेविंग क्रीम	गोदरेज के सभी उत्पाद
5.	शेम्पू	आर्निका, ल्योर, सिल्केशा
6.	टेलकम पावडर	नाइसिल, निविया, लक्मे
7.	नेल पालिश	लक्मे, टीना, टिप्स एण्ड रोस
8.	क्रीम	केलेमाइन (लक्मे), सन
9.	आइमेकप	लक्मे आइ पेन्सिल
10.	अगरबत्ती	एलिफेन्टा, अल्फा
11.	एयर प्यूरीफायर	आडोनिल
12.	लिपिस्टिक	लक्मे टिप्स एण्ड रोस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समता का संगीत

● आचार्य श्री विद्यासागर

सुख के बिन्दु से ऊब गया था यह
दु:ख के सिन्धु में डूब गया था यह।
कभी हार से सम्मान हुआ इसका
कभी हार से अपमान हुआ इसका।
कहीं कुछ मिलने का लोभ मिला इसे
कहीं कुछ मिटने का क्षोभ मिला इसे।
कहीं सगा मिला, कहीं दगा
भटकता रहा अभागा यह।
परन्तु आज सब वैषम्य मिट गये हैं
जब से मिला यह मेरा संगी संगीत।

'मूकमाटी'

'जिनभाषित' के सम्बन्ध में तथ्यविषयक घोषणा

प्रकाशन-स्थान	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा- 282002, उ.प्र.
प्रकाशन-अवधि	:	मासिक
मुद्रक-प्रकाशक	:	रतनलाल बैनाड़ा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)
सम्पादक	:	प्रो. रतनचन्द्र जैन
पता	:	137, आराधना नगर, भोपाल-462003 म.प्र.
स्वामित्व	:	सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)

मैं, रतनलाल बैनाड़ा, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

रतनलाल बैनाड़ा

प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट

भोपाल विश्वविद्यालय से संबद्ध एवं मध्य प्रदेश शासन उच्चशिक्षा विभाग, तकनीकी शिक्षा विभाग एवं
ए.आई.सी.टी.ई नई दिल्ली से मान्यता प्राप्त।
वल्लभ नगर भेल, भोपाल, 462021,दूरभाष 621723, 621718, फैक्स 621723

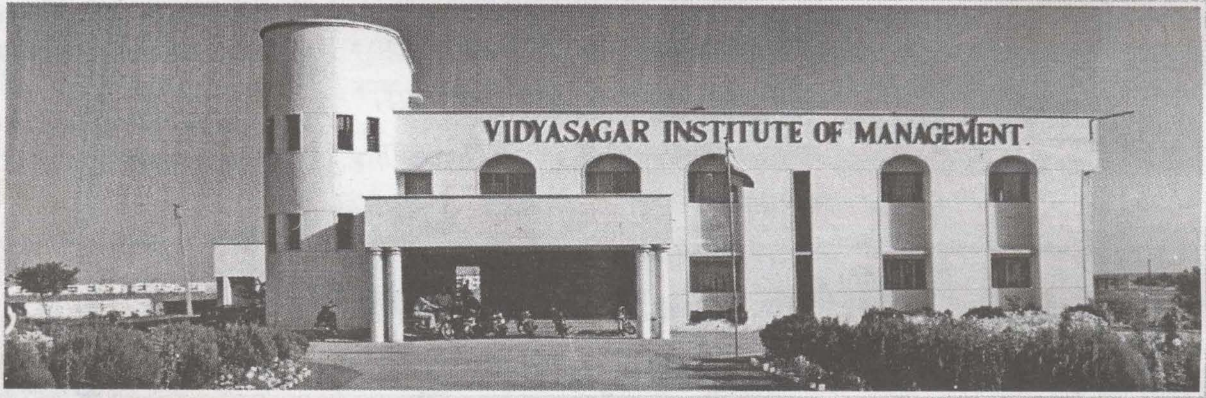

में सत्र 2001-2002 के लिए प्रवेश प्रारम्भ

M.B.A

B.Com. (General)

B.COM.
(Computer Application)

B.C.A

विशेषताएं

- राष्ट्रीय कम्पनियों से प्लेसमेन्ट।
- योग्य एवं अनुभवी प्रोफेसरों द्वारा अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम से अध्यापन।
- गत 4 वर्षों का शत प्रतिशत परीक्षा परिणाम।
- अनेक छात्र विश्व विद्यालय की मेरिट सूची मे।
- सभी छात्रों पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अंग्रेजी,गणित एवं कम्प्यूटर का प्रशिक्षण
- निर्धन मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति
- फुल टाईम इण्टरनेट सुविधा।
- आधुनिक कम्प्यूटर लैब,क्लास रुम, लाइब्रेरी एवं होस्टल।
- क्रिकेट मैदान,बेडमिन्टन कोर्ट, टी.टी रुम।

विद्यासागर संस्थान, विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट,
ज्ञानोदय विद्यापीठ एवं ज्ञानोदय लिम्ब्स की विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु, कृपया अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें।

भवदीय

मदनलाल बैनाड़ा,अध्यक्ष 1/205,प्रोफेसर्स कॉलोनी, हरी पर्वत, आगरा (उ.प्र)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य आफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org